सुलभ कृषि-शास्त्र

प्रथम भाग

— ❀×❀ —

लेखक—

श्री० सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

एम० आर० ए० एस०

— ०×० —

प्रकाशक—

'किसान'-कार्यालय,

इन्दौर।

— × —

प्रथम वार ३००० } १९३७ ई० { मूल्य तीन रुपया " सजिल्द ३॥)

प्रकाशक—
'किसान'-कार्यालय,
इन्दौर।

पहली बार

१९३२

मुद्रक—
हरनामदास गुप्त,
मालिक—भारत प्रिंटिंग वर्क्स,
बाजार सीताराम, दिल्ली।

भूमिका

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की पैदावार पर न केवल इसी देश का वरन संसार के कई देशों का जीवन निर्भर है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में फी सदी ७३ किसान हैं। ये देश के विशेष अङ्ग हैं। इनकी उन्नति पर देश की उन्नति का दारोमदार है। जब तक अज्ञान और दरिद्रता के कीचड़ में फँसे हुए इन करोड़ों किसानों का उद्धार न होगा, तब तक देश की वास्तविक उन्नति नहीं सकती। इन भाइयों की उन्नति के लिये हमें कुछ विधायक काम करने की आवश्यकता है। हमारे द्वारा प्रकाशित होने वाली "कृषि ग्रंथमाला" का आयोजन इसी दिशा में एक प्रयत्न है। हम देश के प्राणाधार इन भाइयों की सेवा करने के उद्देश को लिये हुए कर्मक्षेत्र में उतर रहे हैं। हम चाहते हैं कि हमारे किसान भाइयों की दरिद्रता दूर हो उनमें ज्ञान का प्रकाश चमके अन्य मनुष्यों की तरह जीवन के सुखोपभोग के वे भी अधिकारी बनें-उनमें मनुष्यत्व का विकास हो संसार में चमकने वाले नये प्रकाश से उनके घरों का अन्धकार दूर हो उन्हें अपनी कठिन कमाई का फल मिले—वे अपनी खेती का उपज अधिक से अधिक बढ़ा सकें — अपने पशुओं की नस्ल सुधार सकें मनुष्य की तरह रहने सरीखी उनकी परिस्थिति हो जाय।

हम अपने "कृषि-ग्रन्थमाला" में इसी प्रकार के महत्वपूर्ण

और उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते हैं जिनसे किसानों की दशा के सुधार में कुछ व्यवहारिक सहायता मिल सके।

भारतीय किसानों की उन्नति के कई पहलू हैं। हमें हर्ष है कि हमारे देश हितैषियों का ध्यान देश के जीवन स्वरूप इन दीन हीन भाइयों की ओर आकर्षित होने लगा है। पर अधिकांश रूप से अभी तक यह प्रयत्न "भावनाओं" तक ही परिमित है। हम भावनावाद (Sentimentalism) के विरोधी नहीं। राष्ट्र के जीवन में यह भी एक आवश्यक पदार्थ है। पर जब तक 'भावनावाद के साथ व्यवहारवाद' का मधुर सम्मेलन नहीं होता तब तक देश की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। राष्ट्र की भावनाओं के विकास के साथ साथ उसके सामने कुछ ऐसा विधायक कार्यक्रम (Constructive Programme) भी होना चाहिये जिससे लोगों की स्थिति में वास्तविक सुधार हो, गरीबी और अज्ञान के पंजे से उनकी मुक्ति हो। पश्चिमीय देशों का उन्नति का इतिहास 'भावनाद' और 'व्यवहारवाद' के मधुर सम्मेलन का इतिहास है। दूसरी बात यह है कि आदर्श और व्यवहार में बहुत ही अधिक दूर का अन्तर नहीं होना चाहिये। वैसे तो आदर्श व्यवहार से हमेशा दूर रहेगा। पर यह दूरी एक नियमित सीमा में होनी चाहिये। जिस राष्ट्र के आदर्शवाद और व्यवहारवाद में निकट का सम्बन्ध है वह कम से कम सांसारिक उन्नति में तो आगे बढ़ ही जाता है। जहाँ मनुष्य को संसार की वास्तविक स्थिति से काम पड़ता है, वहाँ केवल 'स्वप्नवादी' होने से काम नहीं चल सकता।

उसे पद पद पर व्यवहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें सुलझाने के लिये दूरदर्शिता, परिणाम-दर्शिता, योग्य समय पर योग्य कार्य करने की तत्परता तथा मानवी प्रकृति में होने वाली गति विधि के सूक्ष्म अवलोकन की आवश्यकता होती है। ससार म जितने सफल राजनीतिज्ञ हुए हैं, उनके जीवन में आप उपरोक्त गुण अवश्य देखेंगे। वे राष्ट्र की नाडी को बडी अच्छी तरह पहचानने वाले थे। समय की आवश्यकता को पहचानना सुरम्दिया के विशेष गुणों म से एक है।

भारतवर्ष की सामयिक अवस्था को सुधारने क लिये कुछ ऐसे कार्यक्रम की भी अत्यन्त आवश्यकता है जिसस देश को प्रत्यक्ष लाभ हो। हम इसी पवित्र उद्देश्य को सामने रखकर "कृषि ग्रन्थमाला" का प्रारम्भ कर रहे हैं। यह "सुलभ कृषिशास्त्र" उसी ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है। यह ग्रन्थ पढे लिखे किसानों तथा कृषक-विद्यार्थियों के लिये लिखा गया है यह ग्रन्थ किस कोटि का है, यह बात जाँचने का अधिकार पाठकों को है। हम सिर्फ इतना कहना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ हमारे कई वर्षों के परिश्रम का फल है। हमने इसम एक दो नहीं सैकडों ग्रन्थों और विविध प्रान्तो के कृषि विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओं और रिपोर्टों से सामग्री जमा करने का प्रयत्न किया है। साथ ही हमने अपने अनुभवों को भी पाठक के सामने रखा है। कृषि शास्त्र एक व्यवहारिक विद्या है। इसमें केवल किताबी ज्ञान से काम नहीं चलता। इसके लिये किताबी ज्ञान के साथ साथ अनुभव भी

चूँकि। हमने इन्दौर प्लन्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट के भूतपूर्व डाइरेक्टर मि० हॉवर्ड से इस सम्बन्ध में कुछ व्यवहारिक प्रकाश प्राप्त किया है। मि० हॉवर्ड कृषि शास्त्र के अपूर्व विद्वान हैं। मैंने उनके कृषि सम्बन्धी ज्ञान को बहुत गहरा पाया। उन्होंने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ और सैंकड़ों पुस्तिकाएँ लिखी हैं। उनके द्वारा स्थापित इन्दौर का 'प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' अपने ढङ्ग की अपूर्व संस्था है। वहाँ कृषिशास्त्र सम्बन्धी बड़े बड़े अन्वेषण हो रहे हैं। वहाँ के विशाल पुस्तकालय का हमने उपयोग किया है। साथ ही मि० हॉवर्ड के विद्वान सहायक श्रीयुत सक्सेना साहब ने भी हमें इस सम्बन्ध में अच्छी सहायता दी है।

हमारा ख्याल है कृषि की ओर जनता का ध्यान अधिक रूप से आकर्षित हो रहा है। कोई चार साल के पहले इन्दौर के सुयोग्य प्राईम मिनिस्टर श्रीमान् बापनासाहब की कृपा से मैंने "किसान" नामक मासिक पत्र का आरम्भ किया था। इस पत्र का बहुत अच्छा सत्कार हुआ। यहां तक कि स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने उसे भारतीय साहित्य का अपूर्व आयोजन कहा और उसके बहु प्रचार की आवश्यकता बतलाई। हिन्दी के प्रायः सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। देश के कई प्रसिद्ध कृषि विद्या विशारदों ने उसे इस विषय के साहित्य में सबसे अच्छा पत्र कहा। बिना विज्ञापन के-बिना किसी प्रकारके यत्न के—भारत के सब प्रान्तोंसे उसकी माग आती रही। हिन्दी के कई पत्र उसके लेख उद्धृत करते रहे। इससे मेरा उत्साह बढ़ा और साथ ही मुझे

यह भी मालूम हुआ कि देश कृषि सम्बन्धी साहित्य की आवश्यकता को महसूस कर रहा है। उसी लिये मैंने इस 'ग्रन्थमाला" का आयोजन किया है।

'सुलभ कृषि शास्त्र" को मैंने, जहाँ तक बन पड़ा है, अत्यन्त सरल भाषा में लिखने का प्रयत्न किया है। बड़े बड़े अनुभवी और प्रसिद्ध प्रसिद्ध कृषि शास्त्र विशारदों के मत भी जहाँ तहाँ उद्धृत किये हैं। जहाँ एक विषय पर दो कृषि-शास्त्र विशारदों के मत भेद हुए हैं वहाँ मैंने अपनी बुद्धि और अनुभव के उपयोग से जिनका मत अधिक लाभकारक जचा है, उसका समर्थन किया है। प्रान्त की परिस्थिति पर भी विशेष ध्यान देने का यत्न किया गया है।

मैं समझता हूँ कि अभी तक न केवल हिन्दी ही में वरन किसी भी देशी भाषा में इस विषय पर इतना विस्तृत और अन्वेषणपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। आपको इस ग्रन्थ में सैंकड़ों ग्रन्थों के निचोड़ के साथ साथ लेखक का अनुभव भी प्राप्त होगा। दूसरा भाग भी तैयार हो रहा है और वह भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

हमने इस ग्रन्थ को साधारण पाठकों और विद्यार्थियों के लिये उपयोगी बनाने का भरसक यत्न किया है। अगर इससे पाठकों को कुछ लाभ हुआ तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

मैंने इस ग्रन्थ के लिखने में इन्दौर प्लेन्ट रिसर्च-इन्स्टीट्यूट के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० हॉवर्ड, बम्बई कृषि विभाग के भूतपूर्व

डायरेक्टर डाक्टर मेन, नागपुर कृषि कॉलेज के प्रिन्सिपाल मि० एलन तथा और भी कई कृषि विद्या विशारदों के ग्रन्थों से बड़ी सहायता ली है। हैदराबाद के कृषि विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० जॉन केनो की Intensive Farming in India से भी मुझे सहायता मिली है। मध्य प्रान्त, बम्बई, यू० पी०, पंजाब तथा मद्रास आदि प्रान्तों के कृषि विभाग द्वारा प्रकाशित सैकड़ों पुस्तक पुस्तिकाओं से भी मैंने बहुत प्रकाश ग्रहण किया है। इंग्लैण्ड और अमेरिका में छपे हुए कुछ ग्रन्थ भी मेरे सहायक हुए हैं। गुना के सुभेसाहब श्रीयुत रामप्रसाद जी, श्री शङ्करराव जी जोशी, प्रो० तजशङ्कर कोचक तथा श्रीयुत दुर्गाप्रसादसिंह जी की हिन्दी पुस्तकों से भी मुझे सहायता मिली है। मैं इन सब सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

इसके सिवा हल्दी की खेती, मक्का की खेती नामक लेख अपने पत्र 'किसान" से उद्धृत किये हैं। इनमें पहला लेख श्रीयुत कृष्णरावजी दुबे कसराबद, दूसरा मि० पी० एल० जोशी का है। चावल की खेती के बीच का एक अंश मैंने जबलपुर के कृषि विभाग के डेप्युटी डायरेक्टर श्रीयुत लक्ष्मीनारायण जी के 'किसान" में प्रकाशित एक लेख से लिया है।

—सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

———

विषय-सूची

— ०※० —

सुलभ कृषि शास्त्र

विद्यार्थियो ! तुम जानते हो कि खेती हिन्दुस्थान का सब से बडा उद्योग है। तुम्हारे इस देश के प्रति सैंकडा ८० मनुष्य खेती या उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे उद्योगों पर अपना गुजर करते हैं। ईसवी सन १९२१ की मर्दुम शुमारी में हिन्दुस्थान की कुल जन संख्या ३१ करोड ६० लाख थी। इन में २२ करोड ४० लाख मनुष्य सिर्फ खेती ही के काम पर लगे हुए थे। इसके सिवाय और भी बहुत से धंधे हैं, जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष खेती से सम्बन्ध है। इन में भी लाखों आदमी लगे हुए हैं। इस पर से तुम समझ सकते हो कि तुम्हारे इस प्यारे देश हिन्दुस्थान के लिए खेती का कितना बडा महत्व है। पर दुःख इस बात का है कि खेती की तरक्की पर पढे लिखे आदमियों का बराबर ध्यान नहीं है। अगर हमारे पढे-लिखे भाई खेती की उन्नति पर ध्यान देने लगें तो वे अपने गरीब देश की बहुत सेवा कर सकते हैं। हमारे किसान भाई, जिन पर हमारे देश की उन्नति का दारोमदार है, अज्ञान के अँधेरे

में पड़े हुए हैं। वे खेती करने के उत्तम तरीकों से जानकार नहीं हैं। प्यारे बालको! तुम देश के भावी नागरिक हो। तुम्हारे पर देश का भविष्य निर्भर करता है। अगर तुम पढ़-लिख कर नौकरी और दासता के मोह जाल में न पड़, खेती करने के उत्तम तरीक़ों से जानकार हो जाओगे तो अपना और अपने प्यारे देश का बहुत कुछ भला कर सकोगे। अब हम तुम्हें खेती से सम्बन्ध रखने वाली कई ऐसी उपयोगी बातें बतलाते हैं, जिन्हें काम में लाने से तुम अपनी खेती की बहुत तरक्की कर सकते हो और अपने देश की माली हालत (आर्थिक स्थिति) सुधार सकते हो।

ज़मीन की जातियाँ

तुम जानते हो कि खेती में सबसे पहले ज़मीन की जाति और उसके सुधार पर ध्यान देने की ज़रूरत है। ज़मीन, जिसमें खेती की जाती है, सात तरह की होती है।

(१) रेतीली ज़मीन –जिस ज़मीन में ३ भाग रेत और चौथे भाग में अन्य वस्तुयें होती हैं या जिस भूमि में १० से २० सैकड़ा तक चिकनी मिट्टी का भाग होता है उसे रेतीली (बलुई) भूमि कहते हैं।

(२) मटियार दुम्मट—इसे चिकनी भूमि भी कहते हैं। जिस भूमि में तीन भाग चिकनी मिट्टी और एक भाग अन्य वस्तुयें हों उसे चिकनी भूमि या मटियार दुम्मट कहते हैं।

(३) दुम्मट—जिस भूमि में आधी रेत और आधी या आधी से ज्यादा चिकनी मिट्टी हो उसे दुम्मट कहते हैं।

(४) रेतीली दुम्मट (इसे बलुई दुम्मट भी कहते हैं)—जिस भूमि में आधी से अधिक रेत और २० से ४० प्रति सैंकड़ा तक चिकनी मिट्टी हो उसे रेतीली दुम्मट कहते हैं।

(५) मटियार (जिसे डाकर और कहीं-कहीं मटियार दुम्मट भी कहते हैं)—जिस भूमि में ८५ से ९५ प्रति सैंकड़ा तक चिकनी मिट्टी हो और बाकी रेत हो उसे मटियार दुम्मट, डाकर या चिकनी दुम्मट कहते हैं।

(६) बंजर—जो भूमि कभी जोती और बोई नहीं जाती उसे बंजर कहते हैं। ऐसी जमीन बहुत कड़ी होती है। नियम और मेहनत से काम करने पर यह भी खेती के काम की हो सकती है। इसको पड़ती-क़दीम भी बोलते हैं।

(७) ऊसर—इस भूमि में कोई चीज उत्पन्न नहीं हो सकती। इस में खार का भाग अधिक रहता है। साधारणतया—इस जमीन में घास भी पैदा नहीं हो सकती। अगर बहुत अधिक मेहनत की जावे तो यह जमीन भी खेती के लायक हो सकती है।

इन जमीनों की परीक्षा और उन्हें उपजाऊ बनाने के तरीक़ों पर किसी अगले अध्याय में प्रकाश डाला जायगा। इसके पहले फ़सल को दिये जाने वाले खादों पर कुछ लिखना आवश्यक मालूम होता है।

विविध प्रकार के खाद

जैसे मनुष्य के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, वैसे ही फ़सल के लिए खाद की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों मे यों कह लीजिये कि खेत में बोई हुई फसल को, उसकी बाढ के लिए, खाद की आवश्यक्ता है। उसे इस खाद का कुछ भाग तो वायुमण्डल से मिलता है, और शेष भाग भूमि मे रहे हुए क्षारों से मिलता है। यदि हम भूमि को कुछ न देते हुए हर साल उस मे से फ़सलें लेते जायेंगे तो यह ज़मीन कमज़ोर होती जायगी। उसकी उपज कम होने लगेगी। यदि हम अच्छी फ़सलें पैदा करना चाहते हैं तो हमे चाहिए कि हम अपनी ज़मीन में अच्छा खाद डालकर उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते रहें। अच्छा खाद देने से कई प्रकार के लाभ होते हैं। पहला लाभ यह है कि पैदावार अच्छी होती है, दूसरा यह कि उससे अच्छा बीज तैयार होता है और तीसरा यह कि अच्छा पौष्टिक अनाज पैदा होता है। हाल ही मे कोयम्बट्टूर के सरकारी कृषि विद्या विशारद बाबू विश्वनाथ जी एफ० आय० सी० और उनके सहायक मि० सूर्यनारायणजी बी०एस०सी० ने खाद के द्वारा फसल में जो परिवर्तन

होते हैं, उनपर एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में खाद देने के अलग अलग तरीक़े, उनके परिमाण तथा समय आदि का ज़िक्र है। हम यहाँ उसी पुस्तक के आधार पर खाद के फ़ायदों का थोड़े में वर्णन करते हैं।

(१) खाद का असर बीज में मौजूद रहता है और खाद दी हुई फ़सल के बीज बोने से दूसरे वर्ष अच्छी पैदावार होती है।

(२) खाद दी हुई फ़सल का बीज बोने से मामूली उपज की ज़मीन में भी अच्छी पैदावार होती है।

(३) गोबर का खाद दी हुई फ़सल का बीज बनावटी खाद की फसल के बीज से कई गुना अच्छा होता है।

(४) बनावटी खाद से पैदा की हुई फ़सल का बीज बिना खाद की फसल से अच्छा होता है।

(५) गड्ढे में तैयार किया हुआ गोबर का सड़ा खाद ताज़ा गोबर के खाद से ज्यादा अच्छा रहता है।

(६) सूखे पत्ते व दूसरी बिना काम की वनस्पति व फ़सल के डंठलों को मिलाकर बनाया हुआ (कम्पोस्ट) खाद भी गोबर के खाद के बराबर ही लाभकारक होता है।

(७) सड़ाये हुए गोबर के खाद का पानी या बची हुई चीज़ें भी ऊपर वाले खाद के बराबर ही लाभकारी होती हैं।

(८) सड़ाये हुए गोबर के खाद में से निकाले हुए पानी में मामूली खाद के पानी की अपेक्षा विशेष खाद्य-द्रव्य रहते हैं।

(९) शराब निकालते वक्त ऊपर जो झाग आजाते हैं उनको कुछ मात्रा में खाद के साथ मिलादेने से फसल पर अच्छा असर पड़ता है और पैदावार लगभग ड्योढ़ी हो जाती है। अगर बनावटी खाद या फासफोरिक एसिड में भी ये झाग मिलाकर ज़मीन में खाद दिया जावे तो पैदावार अच्छी होती है।

(१०) खाद देने से केवल पैदावार ही अच्छी नहीं होती पर ज़मीन की हालत भी सुधरती है और पौधों की बाढ़ अच्छी होने लगती है। इस प्रकार के पौधे और उसके बीज से पशुओं तथा दूसरे वर्ष के पौधों को पुष्टिकारक खाद्य द्रव्य मिलते हैं।

(११) खाद दी हुई फसल का घास खिलाने से पशुओं में ज्यादा ताक़त बनती है।

(१२) केवल बनावटी खाद देने से अनाज की उपयोगिता नहीं बढ़ती, इसलिये बनावटी खाद के साथ दूसरा खाद (जैसे कम्पोस्ट, गोबर का खाद मैला आदि) भी ज़मीन में डालना चाहिये।

(१३) यदि किसी अनाज के गुण में तरक्की करना हो तो उसको अच्छा खाद देना चाहिये। ज़मीन में खाद न डाला गया तो फसल के गुणों में धीरे धीरे कमी आती जायगी।

अब हम जुदे-जुदे खादों और उनकी उपयोगिता के विषय पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

गोबर का खाद

हिन्दुस्थान में गोबर का खाद बड़ी सुगमता से मिल सकता है। यह बड़ा ही बहुमूल्य खाद है। अगर हमारे किसान भाई इसको योग्य रीति से काम में लावें तो वे अपनी फ़सल की बहुत तरक्की कर सकते हैं। पर कितने अफ़सोस की बात है कि यहाँ गोबर जैसे बहुमूल्य पदार्थ के, जलाने के लिए, कडे बनाये जाते हैं। हम समझते हैं कि हिन्दुस्थान में जितना गोबर कण्डों के बनाने में खर्च होता है, उतना खाद के काम में नहीं होता। बड़े बड़े कृषि-विद्या विशारद, लोगों की इस अज्ञानता पर, आँसू बरसाते हैं। दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ गोबर के खाद का जिस ढङ्ग से उपयोग किया जाता है वह भी ठीक नहीं है। हमारे किसान भाई गोबर और कूड़ा करकट के ढेर को खुली जगह में डाल देते हैं जिससे उस पर बरसाती पानी और सूर्य की गर्मी का असर पड़ता रहता है और इससे उसके गुणों में बहुत कमी आजाती है। किसान लोग इस प्रकार के गोबर को खाद के काम में लाते हैं और समझने लगते हैं कि हम ने जमीन में काफी खाद डाल दिया। पर इस खाद के डालने से विशेष फायदा नहीं होता। क्योंकि जिन तत्त्वों से जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है, वे इस में नाम मात्र को रह जाते हैं। इस लिये हमें ऐसा उपाय करना चाहिए जिस से इस अमूल्य खाद के वे तत्त्व नष्ट न हों जो फ़सल को फायदा पहुँचाने वाले होते हैं। इस खाद में नाइट्रोजन

फास्फारिक एसिड, पोटाश आदि सब चीजें मौजूद रहती हैं, जो कि पौधों के लिये सबसे अच्छी भोजन सामग्री है। इस खाद से केवल पौधों ही को फायदा नहीं पहुँचता है, वरन् जमीन की भी तरक्की होती है। इस खाद के डालने से मिट्टी के बड़े बड़े ढेले नरम हो जाते हैं और रतीली जमीन में पानी सोखने की ताकत आजाती है। इसके सिवाय इससे मिट्टी के परमाणु आपस में मिल जाते हैं। पाठक जानते हैं कि खाद से पौधों को जो जो सामग्रियाँ मिलती हैं उनमें नाइट्रोजन मुख्य है। हिन्दुस्थान की भूमि के लिये तो इसकी बड़ी ही आवश्यकता है। क्योंकि उसमें इसकी प्रायः कमी रहती है। इसके मिल जाने से यहाँ की जमीन की उपजाऊ शक्ति बहुत बढ़ जाती है और फसल भी ज्यादा पैदा होने लगती है। गोबर को यदि विधि पूर्वक तैयार किया जावे तो वह अत्यन्त लाभदायक हो सकता है। इन्दौर प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट नामक सुप्रसिद्ध कृषि संस्था के भूतपूर्व विद्वान डायरेक्टर मि० ए० सी० हावर्ड ने ढोरों के गोबर, पेशाब तथा कूड़ा करकट से खाद बनाने की बड़ी ही अच्छी तरकीब लिखी है। हम आपके लेख का सारांश सरल और सुबोध भाषा में नीचे प्रकट करते हैं।

"हिन्दुस्थान में खाद की कमी को पूरा करने की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है, हमारे किसान भाइयों को चाहिये कि जिन जिन वस्तुओं से खाद बनता है, उनका अच्छे से अच्छा उपयोग करना सीखें। हमारी कृषि संस्था में ऐसा किया जाता है और उसके बहुत ही अच्छे नतीजे निकले हैं। क्या ही

अच्छा हो अगर हमारे किसान भाई भी इनसे फायदा उठावें"।

"यह बतलाने की जरूरत नहीं कि राजपूताने और मध्य भारत में अधिकांश खाद गाय, बैल और भैंसों के गोबर से बनता है। यह जानवर खेती बाड़ी और दूध के लिये पाले जाते हैं। इन जानवरों से एक और उपयोगी काम लिया जा सकता है वह यह कि इन जानवरों को हमेशा ६ इञ्च गहरी भुरभुरी और मुलायम मिट्टी पर सोने तथा आराम करने दिया जाय। यह मिट्टी जानवरों के तमाम पेशाब का पीलेगी। इसको या तो खेत में ऐसे ही डाल दिया जाय या कम्पोस्ट खाद बनाने में इसका उपयोग किया जाय। कम्पोस्ट खाद बनाने की रीति हम आगे चलकर लिखेंगे। चीन और जापान के उद्योगी किसान अपने जानवरों को इस उपयोग में लाते हैं। भारतीय किसानों को भी चाहिये कि वे इस सीधी और लाभदायक तरकीब से फायदा उठावें।"

कम्पोस्ट खाद।

प्यारे बालको! अब हम तुम्हारे सुभीते के लिये कम्पोस्ट खाद बनाने की सीधी और सरल तरकीब लिखते हैं। यह खाद बहुत ही लाभदायक होता है। साधारण खाद की अपेक्षा फ़सल की पैदावार पर इसका बहुत अच्छा असर गिरता है। अगर तुम्हें खेती करने का मौक़ा मिले तो तुम इस प्रकार के खाद को जरूर काम में लाना। इससे तुम्हें बड़ा लाभ होगा।

घालको। कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिये एक ३० फीट लम्बा, १४ फीट चौडा और ३॥ फीट गहरा गड्ढा खोदो। उसकी दिवालें ढालू बनाओ। इसके बाद उसमें नीचे लिखी चीजें विधि अनुसार डालकर खाद तैयार करो

(१) गाय, बैल तथा अन्य ढोरों के बाँधने के स्थान की पेशाब से भीगी हुई मिट्टी।

(२) हर प्रकार का घास-फूस, पत्ते, कूड़ा कचरा तथा कपास, तुअर, गन्ना की निकम्मा संटियाँ आदि। इन चीजों को काम में लाने के पहले खूब बारीक कर जानवरों के नीचे बिछा देना चाहिये। जिससे उसमें गोबर, पेशाब आदि मिल जावे। इसे बिछाली भी कहते हैं। १० भाग बिछाली के साथ १ भाग पेशाब वाली या मामूली मिट्टी मिला कर तैयार किये हुए गड्ढे में डालते रहो। जितनी खाद मिल सके वह भी गड्ढे में डालते रहो। जब गड्ढा आधा भर जावे तब उसमें पानी देदो। इसके बाद तुम देखोगे कि इस गड्ढे में डाले हुए खाद से एक प्रकार का जोश या खमीर उठने लगेगा। इस तरह गड्ढे को सारा भर कर ऊपर से लीप दो। तुम देखोगे के इससे ५ ६ मास में बहुत ही अच्छा खाद बन जावेगा। हाँ, यहाँ इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि इस बीच में गड्ढे में दो तीन बार और पानी देना चाहिये। क्योंकि पानी न देने से अगर गड्ढे की वस्तुएँ सूख जावेंगी तो वे सड नहीं सकेंगी, और इससे अच्छा खाद तैयार न होसकेगा। ५ ६ मास के बाद इसका रंग काले

चूरे के समान होजायगा। इन्दौर प्लेण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट नामक कृषि संस्था के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० हावर्ड ने कपास, गहूँ, मूंगफली, गन्ना आदि फसलों पर इस खाद का उपयोग किया है और उन्हें इसमें बड़ी ही सफलता प्राप्त हुई है। वे अपने ग्रन्थों में तथा अपने लेखों में इस खाद की बड़े जोरों से सिफ़ारिश करते हैं। यह खाद बहुत सस्ता बन सकता है और हमारे भारत के गरीब किसानों के लिये तो यह बहुमूल्य सम्पत्ति है। अगर हमारे देश के लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो और वे ढोरों के मल-मूत्र तथा अन्य निकम्मे पदार्थों से इस प्रकार का खाद तैयार कर काम में लावें तो देश की आर्थिक अवस्था को बहुत कुछ सुधार सकते हैं।

गोबर के खाद पर कानपुर कृषि-कालेज प्रिन्सिपल मि० सुवय्या के विचार

कानपुर कृषि कालेज के सुप्रसिद्ध प्रिन्सिपल मि० सुवय्या ने ढोरों के गोबर और मल मूत्र के खाद के विषय में एक बड़ा ही मननीय लेख लिखा है। उसमें इस विषय के कई पहलुओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। हम अपने पाठकों के लिये इसे उपयोगी समझकर इसके एक अंश विशेष का अनुवाद नीचे देते हैं।

'यों तो सभी दशों में गोबर का खाद थोड़ी या बहुत तादाद में काम में लाया जाता है पर हिन्दुस्थान में तो यह खाद ही

सबसे मुख्य समझा जाता है। इस खाद में नाइट्रोजन, फास-फोरिक एसिड और पोटाश आदि ऐसे तत्व रहते हैं जो पौधों के लिये बड़ी ही अच्छी भोजन सामग्री का काम देते हैं। दूसरी बात यह है कि इस खाद से केवल पौधों को ही फायदा नहीं पहुँचता है वरन् जमीन की भी तरक्की होती है। इस खाद के डालने से मिट्टी के बड़े बड़े ढेल नरम हो जाते हैं और रेतीली जमीन मे पानी सोखने की ताक़त आ जाती है। इसके सिवाय इससे मिट्टी के परमाणु आपस में मिल जाते हैं। इसके साथ ही यह भी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि खाद से जो जो सामग्रियाँ पौधों को मिलती हैं उन सब मे नाइट्रोजन मुख्य है। खासकर हिन्दुस्थान की भूमि के लिये तो इसकी बड़ी ही जरूरत है। क्योंकि इसमें इस की बड़ी ही कमी है। इसके मिल जाने से यहाँ की जमीन की उपज शक्ति बहुत बढ़ जाती है और फसल तिगुनी चौगुनी तक पैदा होने लगती है। यह नाइट्रोजन बड़ा महँगा होता है और मुश्किल के साथ बनता है। इसलिये हर एक किसान का यह कर्तव्य है कि वह ज्यादा से ज्यादा तादाद में इसे इकट्ठा कर अपनी फसल और जमीन की तरक्की करे। ढोरों के गोवर और उनके पेशाव में यह पदार्थ रहता है। पर सभी ढोरों के मल मूत्र मे यह एक तादाद में नहीं रहता। ढोरों के गोवर या उन के पेशाव में नाइट्रोजन का कम या अधिक होना नीचे लिखी हुई तीन बातों पर निर्भर है।

(१) पशु की जाति और उसकी तन्दुरुस्ती पर।

(२) पशु की खाने पीने की सामग्री तथा उस सामग्री के वज़न पर।

(३) खाद का इकट्ठा करने तथा उसके हिफ़ाज़त के तरीकों पर।

भेड़ या बकरी की मिंगनिया घोड़े की लीद से अधिक कट्टी रहती हैं। उससे भेड़ या बकरी के खाद में घोड़े की लीद से अधिक नाइट्रोजन रहता है। इनसे कुछ कम गायों के गोबर में और उससे कुछ कम भैंसो के गोबर में नाइट्रोजन का अँश रहता है।

नीचे लिखे हुए अँकों से मालूम होगा कि हर एक जाति के पशुओं के गोबर और पेशाब में कितना अँश नाइट्रोजन रहता है।

	गोबर	मूत्र
भेड़	०७	१४
घोड़ा	०५	१२
गाय	०३	०९

उक्त अङ्कों से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि पशु के गोबर की अपेक्षा उसके मूत्र में नाईट्रोजन अधिक तादाद में रहता है। इसी तरह बछड़ों व बनिस्बत ज्यादा उमर वाले जानवरों के गोबर व पेशाब में नाइट्रोजन का ज्यादा हिस्सा रहता है। दूध देनेवाली गाय या भैंस की अपेक्षा बारडी गाय या भैंस के मल मूत्र में अधिक नाइट्रोजन मिलता है।

अनुभव से यह भी मालूम हुआ है कि पशु को जितना

अच्छा खाद्य (भोजन) दिया जायगा, उतना ही अधिक उसके गोबर में नाइट्रोजन का हिस्सा रहेगा। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि अलग अलग तरह के खाद्य में नाइट्रोजन की अलग अलग मात्रा रहती है इसलिये हमें पशुओं के खाद्य पर विचार करने की खास जरूरत है। हिन्दुस्थान में पशुओं को खास तौर पर दो प्रकार का खाद्य दिया जाता है। एक तो चारा (कडवी घास आदि) और दूसरा बाँटा जैसे बिनौला, ज्वार, चने, अरहर माठ, खली आदि। इनमें से पहिली प्रकार के खाद्य में प्रति १००० पौंड पीछे ४ पौंड नाइट्रोजन रहता है और दूसरे में ३५ से लगाकर ५० पौंड तक। इससे यह साफ मालूम होता है कि दूसरी तरह के खाद्य में यानी बाँटे में पहिले की अपेक्षा दस या बारह गुना नाइट्रोजन ज्यादा मिलता है। इसके साथ ही यह बात भी न भूलना चाहिये कि बाँटे से मवेशी की तन्दुरुस्ती भी बढती है।

भारत सरकार के कृषि-रसायन शास्त्री डाक्टर लेदर ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि पशुओं को जितना ज्यादा बाँटा दिया जाता है उतना ही ज्यादा नाइट्रोजन उनके पशाब व गोबर में रहता है। प्रयाग के लिये उक्त डॉक्टर ने गोबर के १३ नमूने लिये। उन में से छ नमूने बाँटा खानेवाले और सात नमूने बिना बाँटा खानेवाले पशुओं के थे। इन नमूनों को जाँच करने पर पहले नमूनों में नाइट्रोजन का प्रति सैंकड़ा ०५४ वाँ अंश और दूसरों में सिर्फ ०१७ वाँ अंश मिला। इस प्रकार

दोनों में लगभग तिगुना फर्क पड़ा। इन सब प्रयोगों से उक्त डॉक्टर महोदय ने यह दिखलाया है कि पशुओं को दिये जाने वाले बाँटे में नाइट्रोजन की जितनी अधिक मात्रा होती है ठीक उतनी मात्रा उनके गोबर व मूत्र में निकल आती है। यूरोप के किसानों ने इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लिया है और इससे उन्होंने अपने ढोरों का बाँटा भी खूब अधिक बढ़ा दिया है। व अब समझने लगे हैं कि जो कुछ बाँटा वे खिलाते हैं वह फिजूल नहीं जाता। बल्कि वह उनके पशुओं की तन्दुरुस्ती को बढ़ाते हुए उतनी ही कीमत का खाद तैय्यार करता है।

यह तो हुई खाद व नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने की बात। अब इस मात्रा को खाद में किस तरह बनाये रखना चाहिये, इस विषय की चर्चा करना आवश्यक है।

ढोरों को बाँधने की जगह में से जितना भी गोबर और बारीक कूड़ा करकट निकले, उस सब का उम्दा खाद बन सकता है। परन्तु अफसोस है कि हमारे देश में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता और इस अनमोल पदार्थ को फिजूल जला दिया जाता है। इससे देश की जितनी आर्थिक हानि होती है वह चिन्तनीय है।

हम ऊपर कह आये हैं कि ढोरों के मूत्र में उनके गोबर से भी अधिक नाइट्रोजन रहता है। इसलिये यह चीज भी फिजूल फेंक देने की नहीं है। लेकिन हम देखते हैं इस ओर किसानों का बिल्कुल ध्यान नहीं है। वे मूत्र गोबर आदि को यों ही पड़ा रहने

देते हैं, जिससे उसका नाइट्रोजन उड़ जाता है और उसकी दुर्गन्ध से ढोरों को व वहाँ रहनेवाले मनुष्यों को बड़ी तकलीफ होती है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कानपुर-कृषि कॉलेज के प्रिंसिपल मि० बी० सुबैय्या लिखते हैं—"किसानों को चाहिये कि जहाँ तक बने वहाँ तक अपने ढोरों को खेत ही में रक्खें जिससे उनका गोबर व पेशाब खेत ही में पड़ता रहे। उन्हें घर के कोने में बँधे रखने तथा उनके गोबर व मूत्र का उपयोग न करने से बड़ा नुकसान होता है। यदि यह बात मुमकिन न हो तो जिस प्रकार युरोप व अमेरिका में ढोर रक्खे जातेहैं और उनका खाद इक्ट्ठा किया जाता है, उसी प्रकार का इन्तजाम यहाँ पर किसानों को भी करना चाहिये।

उपरोक्त देशों में मवेशियों को बाँधने के दो तरीक़े काम में लाये जाते हैं।

एक तो यह जिसमें पशुशाला या कड़ढान को २ या २॥ फ़ीट गहरी खोद कर, उसको लीप करके बाद में तली में कुछ राख बिछा दी जाती है और उसके ऊपर घूस करकट का एक हलका सा बिछौना बना दिया जाता है। इस बिछौने पर मवेशी का गोबर व पेशाब पड़ता है। जब प्रतिदिन सबेरा होता है तो झाड़ू निकालने वाला उस गोबर को कड़ढान में चारों ओर फैला देता है और उसी पर कुछ नया घूस करकट डालकर दूसरा बिछौना तैय्यार कर देता है। इस प्रकार उस कड़ढान में सारा गोबर व मूत्र इक्ट्ठा होता रहता है। जब सारा गड्ढा भर

जाता है तो फिर ऊपरी तह से कुछ खाद को अलग निकाल लिया जाता है और बाकी का सारा खाद खोद खोद कर खेतों के गड्ढों में पहुँचा दिया जाता है। इस के बाद फिर उसी प्रकार नया खाद इकट्ठा करने का काम शुरू कर दिया जाता है। इस तरह का खाद बडा उम्दा होता है और उसका फैलाने में विशेष कठिनाई नहीं उठानी पडती। इस तरकीब से साल भर में एक जोडी बैल से १५० मन खाद जमा हो सकता है।

कुछ लोगों का कथन है कि इस तरह मवेशियों को रखने से उनकी तन्दुरुस्ती में फर्क पड जाता है, परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव से पता चलता है कि इस से मवेशियों की तन्दुरुस्ती पर कुछ भी बुरा असर नहीं पडता। हिन्दुस्तान के कई फार्मों में इसी तरीके पर मवेशी बांधे जाते हैं।

दूसरी तरकीब में गड्ढा खोदने की जरूरत नहीं होती और न कूडा कर्कट निकालने की ही आवश्यकता होती है। यह तरकीब खास कर उन स्थानों में बडे काम की है, जहाँ घास बहुत महगा मिलता है। यह तरकीब पहिली तरकीब की अपेक्षा ज्यादा आसान भी है। इसके लिये मवेशियों की कडछान का फर्श मिट्टी कूट कर कठोर बना दिया जाता है और वह कुछ ढालू रखा जाता है। उस से कुछ दूरी पर कवेलुओं की एक नाली बना दी जाती है। इस नाली के अन्त में एक मिट्टी का घड़ा रख दिया जाता है। हम पहले कह चुके हैं कि जब कभी मवेशी कडछान में बांधे जाते हैं तो उनका बहुत सा मूत्र फिजूल

जाता है। परन्तु इस नाली द्वारा सब मूत्र उस घड़े में जाकर इकट्ठा हो जाता है। जब सवेरा होता है तो भाड़ू निकालनेवाला सब गोबर इकट्ठा कर लेता है और उसके साथ ही वह गीली ज़मीन की मिट्टी को भी कुछ कुछ खोद लेता है। इस मिट्टी को वह उस इकट्ठे किये हुए गोबर में मिला देता है और फिर उस मिट्टी की जगह पर सूखी मिट्टी लाकर बिछा देता है। इस तरह उस गीली मिट्टी का जिस में पेशाब का अंश मिला रहता है, गोबर के संयोग से बड़ा अच्छा खाद बन जाता है। यह खाद हर रोज़ एक बड़े गड्ढे में डाल दिया जाता है और उसी में मूत्र का घड़ा भी खाली कर दिया जाता है। इस खाद में जो गीली मिट्टी मिली रहती है वह बड़े काम की होती है और उसमें का नाइट्रोजन सज्जी या सोडियम नाइट्रेट का काम देता है। इस प्रकार का खाद बहुत दिनों तक पड़ा नहीं रहना चाहिये क्योंकि इस में नाइट्रोजन के उड़ जाने का डर रहता है। इसलिये ३ या ४ चार महीने में उसका उपयोग कर लेना ज्यादा लाभदायक होता है।

खाद का गड्ढा

खाद को हिफ़ाज़त के साथ इकट्ठा करने के लिये ऊपरी तरकीबों में से चाहे जो तरकीब काम में लाई जाय, पर खाद जमा करने के लिये एक गड्ढा बनाना बड़ा ज़रूरी है। कोई कोई यह कह सकते हैं कि जिस हालत में मवेशियों को फ़ड़ख़ान ही

में गड्ढा खोद कर खाद जमा किया जावे, उस हालत में अलग गड्ढा बनाने की क्या आवश्यकता है? मगर उस हालत में भी एक बड़ा गड्ढा बनाने की बड़ी जरूरत है। क्योंकि खाद में न केवल ढोरों का गोबर व मूत्र ही काम में आ सकता है, वरन् आम, शीशम, नीम आदि झाड़ों के गिरे हुए पत्ते, घर का कूड़ा कर्कट, सड़ी या खराब तरकारी आदि चीजों को भी खाद के गड्ढे में डाल कर नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इस खाद के गड्ढे को हमेशा ऊंची सतह पर बनाना चाहिये। इस का फर्श व आजू बाजू पर चूने की कलई भी कर देना चाहिये। पतझड़ ऋतु में गिरे हुए पत्तों व साठों के डठलों में भी गोबर के बराबर नाइट्रोजन का अंश रहता है, अतएव मुमकिन हो तो इन्हें भी गड्ढे में डाल देना चाहिये।

इस प्रकार हर एक किसान अपनी एक बैल जोड़ी द्वारा १५० से लगा कर ३०० मन तक खाद जमा कर सकता है।

यहां यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि खाद के गड्ढे को मिट्टी से लीप देना चाहिये। ऐसा करने से उसमें का नाइट्रोजन का अंश भी न उड़ेगा व खाद भी सूखने न पायगा।

भेड़ बकरी की लेंडी (लीद) का खाद

भेड़ बकरी की लेंडी का खाद गाय बैल के गोबर के खाद से ज्यादा जोरदार होता है। यह अपना असर भी तुरन्त दिखलाता है। इसमें पौधों को मिलने वाला भोजन अधिक होता

है। इससे पौधे अच्छे फलते फूलते हैं। तरकारियां, फल फूल के पौधे तथा अन्य क़ीमती फ़सलों के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। हरएक फल माड़ को पाँच सेर लेंडी के खाद का महीन चूरा उसकी जड़ खुली कर देना चाहिये और बाद में उस खाद को मिट्टी से ढक देना चाहिये। अगर यह खाद अधिक तादाद में मिल सके तो इसे अनाज की फसल में भी दे सकते हैं।

भारतवर्ष के अधिकांश प्रान्तों में इस खाद के देने की यह रीति है कि जुते हुए खेतों में रात को भेड़ें बैठाई जाती हैं। रात भर में दो तीन बार इनकी जगह बदली जाती है। भेड़ बैठाने के बाद शीघ्र ही खेत को हल या बक्खर से जोत दिया जाता है।

फी एकड़ ज़मीन में ज़रूरत के मुताबिक हर रोज़ २०० से १४०० तक भेड़ें लगातार दस दिन तक बैठाना चाहिये। खाद की ज़रूरत के मुताबिक भेड़ बकरियों की संख्या घटाई बढ़ाई जा सकती है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं फल फूल और गुलाब को इस खाद से ज्यादा फ़ायदा पहुँचता है। सब ही प्रकार की तरकारियाँ, आलू, गन्ना, जीरा गेहूँ आदि के लिये भी यह खाद बहुत ही फ़ायदेमन्द है।

मनुष्य के विष्ठा का खाद

प्यारे बालको! परमेश्वर की सृष्टि में कोई पदार्थ निकम्मा या बेकाम नहीं है। जिन्हें हम बेकाम और निकम्मा समझते हैं

वे भी अगर उचित रूप से काम में लाये जावें तो बहुमूल्य और लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। मनुष्य का विष्ठा कितना घृणित और निकम्मा माना जाता है पर क्या तुम यह जानते हो कि इसका कितना बढ़िया खाद तय्यार होता है। इसका उपयोग करने से खेती में बड़ी तरक्की हो सकती है। हम इस लेख में आगे चलकर मनुष्य के विष्ठा के महत्त्व, गुण और उसके व्यवहारिक उपयोग पर दो शब्द लिखना चाहते हैं।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध कृषि विद्या विशारद ग्रेन्डोल साहब ने अपने कृषि शास्त्र सम्बन्धी भाषण में कहा था।

"पेशाब और मनुष्य के विष्ठा को व्यर्थ फेंकने से रोम राज्य का आर्थिक नाश हुआ। उसकी खेती बर्बाद हो गई तथा समृद्धिशाली रोम राज्य के किसान शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो गये। रोम शहर की तेजी फीकी पड़ गई। इसके बाद सिसिली, सार्डिनिया और अफ्रीका भी विष्ठा के खाद का दुरुपयोग करने से पतन अवस्था को पहुँच गये। ये देश अपना बड़प्पन अब तक प्राप्त न कर सके। इसके विपरीत चीन ने इस अमूल्य वस्तु का महत्व समझा। वह हजारों वर्षों से बराबर इसकी रक्षा और सदुपयोग करता आ रहा है। यही कारण है कि आज चीन की आबादी दिन दिन बढ़ती जा रही है। संसार के $\frac{1}{4}$ लोग चीन के उत्पन्न किये हुए अनाज पर अपना गुजर बसर करते हैं। चीन की खेती ने इतनी तरक्की की है कि विज्ञान शिरोमणि अमेरिका भी उसके सामने सिर झुकाता है। जापान की भी यही

हालत है। वह भी मनुष्य के विष्ठा और मूत्र को व्यर्थ नहीं जाने देता। उनका खाद के बतौर उपयोग करता है। इसी से खेती में उसने आश्चर्यकारक उन्नति कर ली है।' क्रेन्डोल साहब के उक्त विचारों में अतिशयोक्ति हो सकती है, पर उनमें सत्य का बहुत कुछ अंश है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो देश मनुष्य के मल-मूत्र जैसे पदार्थों को व्यर्थ जाने देता है तथा उनका खाद के बतौर उपयोग कर खेती की तरक्की नहीं करता वह अभागा है। वह खेती के एक बडे फायदे से हाथ धो बैठता है।

मनुष्य का विष्ठा खेती के लिये सचमुच अमूल्य खाद है। इसीलिए कोई कोई सज्जन इसे सुनहरी खाद (Golden manure) भी कहते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध कृषि विद्या विशारद लीबीग महोदय तो इसे खादों का राजा (king of manures) कहते हैं। वे तो इस पर बेतरह मोहित हैं। उनका तो विश्वास है कि अगर कोई देश इसका उचित और समयानुकूल उपयोग करे तो वहाँ दरिद्रता का ठहरना मुश्किल हो जावे। जमीन की पैदायशी ताकत बहुत बढ जाय। जमीन कभी गरीब न हो। वह फसल को बराबर रस देती रहे।

पाठक जानते हैं कि मनुष्य जो कुछ भोजन करता है उसका बहुत अंश उसके शरीर के पोषणादि में लग जाता है और बाकी बचा हुआ अंश मैला बन कर बाहर निकल आता है। अतएव इस खाद का बहुत कुछ गुण मनुष्यों के भोजन पर निर्भर करता है। जिस

देश के लोग उत्तम भोजन करते हैं, वहाँ के मनुष्यों के विष्ठा का खाद बहुत बलवान और अधिक लाभकारी होता है। विष्ठा और पेशाब का विश्लेषण करने से रसायन शास्त्रियों को यह भी पता लगा है कि शाकाहारी मनुष्यों के विष्ठा की अपेक्षा मांसाहारी मनुष्यों की विष्ठा में खाद के अधिक तत्त्व रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य कुछ अच्छा खाद पैदा करने के लिए अभक्ष्य का भक्षण करे। यह बात तो केवल वैज्ञानिक दृष्टि से कही गई है। साधारण रीति से सौ भाग विष्ठा में २५ भाग खाद के तत्त्व रहते हैं और शेष पचहत्तर भाग पानी रहता है। इन पचीस भागों में डेढ़ भाग नायट्रोजन और एक भाग फ़ॉसफरस रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विष्ठा में ये तत्त्व बहुत ही क़ीमती रहते हैं।

बहुत से आदमी दुर्गन्धि के कारण इससे बड़ी नफ़रत करते हैं। पर अगर वे इसमें कोयले का चूरा अथवा सूखी मिट्टी की राख मिला दें तो इसकी दुर्गन्धि दूर हो सकती है। हमारे कई पाठक जानते होंगे कि कई म्युनिसिपैलिटियाँ मैले में राख मिलाकर एक विशेष क्रिया से उसका दुर्गन्ध रहित खाद बनाती हैं। इसे पौड्रेट कहते हैं। यह बड़ा ही उपयोगी खाद होता है। इसके अलावा विष्ठा का खाद तैयार करने की एक और रीति यह है कि १० हाथ लम्बा ६ हाथ चौड़ा और ३ हाथ गहरा गड्ढा खोदा जावे। सुभीते के अनुसार यह गड्ढा कुछ छोटा-बड़ा भी हो सकता है। इस गड्ढे में १ फुट भर मैला डाल कर उस पर छ इञ्

मिट्टी डालीजाय, इसके बाद फिर उस मिट्टी पर एक फुट विष्ठा डाल कर ६ इञ्च मिट्टी डालीजाय। इस प्रकार गडढे को भर कर जिस जमीन में वह गड्ढा हो उसे मिट्टी से ढककर जमीन से एक फूट ऊँचाकर दिया जाय। ६ या ७ मास में मैले की दुर्गन्धि बिलकुल निकल जायगी और वह सूखी मिट्टी के समान होकर खेत में डालने योग्य हो जायगा। बडे बडे शहरा, कस्बों और गाँवों में यह खाद बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है। पूना म्युनिसिपैलिटी में नीचे लिखी हुई रीति के अनुसार मैले का खाद बनाया जाता है।

६ फीट लम्बा, ५ फीटचौडा और ३ फीट गहरा एक गड्ढा खोदा जाता है। उसके नीचे एक थर कूडा करकट की डाल कर उसके ऊपर छ इञ्च पतली एक थर मैलें की डाली जाती है। इसी रीति से कूडा करकट और मैले की थरें की जाती हैं। इसमें गड्ढे की ऊपरी थर कूडा करकट की न होना चाहिये। बस थोडे महीनों में बढिया खाद तैयार हो जायगा। मि० फेसिलमेन नामक एक फ्रान्सीसी कृषि विद्या विशारद विष्ठा या मैले की खाद बनाने की नि लखित पद्धति बतलाते हैं,—"एक १८ वर्ग फीट लम्बे और एक फीट गहरे चोकोन गड्ढे में ईंटें जमा दो। उसके तले में कूडे करकट तथा राख की एक इञ्च थर लगा दो और फिर उस पर पाँच इञ्च मैला बिछा दो। इसक ऊपर फिर उसी तरह राख का एक इञ्च थर लगा दो और उस पर फिर उतना ही मैला बिछा दो। इस प्रकार गड्ढे को भर कर एक दिन खुला रहने दो। बाद में उसे मिट्टी के थर से बन्द कर दो। कभी कभी उस

पर पानी का छिड़काव कर दो।। बड़ा ही बढ़िया खाद बन जायगा। गुना के सूबे साहब मि० रामप्रसाद लिखते हैं कि मैला का खाद बनाने की एक सुलभ रीति यह है कि मिट्टी में मैला सड़ाने के बजाय उसको पानी में सड़ाया जावे जिससे कि उसमें का मिश्रित नाइट्रोजन (Combined Nitrogen) पानी में मिलजावे और वह पानी सिंचाई और खाद का काम दे सके।

ऊपर विष्ठा का खाद बनाने की जुदी जुदी रीतियाँ दी गई हैं। किसान अपने सुभीते के अनुसार उन्हें काम में लावें। हाँ, यहाँ यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि विष्ठा का खाद बहुत गर्म होता है, इस लिये जिस खेत में यह खाद छोड़ा जावे उसे कई बार पानी देने की आवश्यकता होती है। दूसरी बात यह है कि खेत में इस खाद के देने के पश्चात् शीघ्र ही बीज न बोया जावे। इससे आरम्भ में तो पौधा अच्छा आयगा, पर थोड़े ही समय में वह पीला पड़कर नष्ट हो जायगा। विष्ठा का खाद उस हालत में उपयोगी हो सकता है, जब वह भलीभाँति सड़ जावे और मिट्टी की भाँति दिखलाई देने लगे। मैले का खाद देने के बाद तीन चार वर्ष तक फिर खाद देने की जरूरत नहीं पड़ती।

हम इस खाद की दुर्गन्ध दूर करने की एकाध सुलभ पद्धति ऊपर लिख चुके हैं, और वे ही यहां के किसानों के लिये ठीक हैं। इसके अतिरिक्त युरोप में भी दुर्गन्धि दूर करने के लिये कुछ उपाय काम में लाये जाते हैं। सिलिकेट ऑफ आरशिया भी

मैल की दुर्गन्धि दूर करने की सफल औषधि सिद्ध हुई है। इसके अलावा वहाँ मैला निप्सम (एक प्रकार की खड़िया मिट्टी) में मिला कर बेचा जाता है। इससे भी उसकी दुर्गन्धि दूर हो जाती है।

प्रति एकड़ ४० से १५० मन तक मैले का खाद दिये जाने का तरीक़ा है। खाद देने के पूर्व खेत का खूब जोत कर मिट्टी नर्म और भुरभुरी कर लेना चाहिये।

विष्ठा के खाद के प्रयोग

भारतवर्ष के जुदे-जुदे कृषि क्षेत्रों पर विष्ठा के खाद के कई सफल प्रयोग किये गये हैं। मध्य प्रान्त क लभाड़ी कृषि क्षेत्र पर धान (बिना साफ़ किया हुआ चावल) की फ़सल पर खाद के प्रयोग किय गये। गोबर के खाद स यह ज्यादा अच्छा साबित हुआ। नीचे क नक्शा स यह मालूम होगा।

१२ सालों ■ प्रयोग करने पर धान की पैदावार का औसत वज़न।

	२
	पौन्ड
सोन खाद (विष्ठा का खाद)	^१७८३
गोबर का खाद	११५३
बिना खाद	६१३

यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि विष्ठा का खाद गोबर के खाद के बराबर ही सस्ता पड़ता है।

नागपुर के कालेज फ़ार्म पर कपास ज्वार और तुअर को अनुक्रम से दो सालों तक सोन खाद देने से जो लाभ हुआ वह नीचे के नक़्शे में दिया है। सोन खाद कपास बोने के साल में दिया गया।

——	औसत	कड़बी	दो साल कास्त की औसत क़ीमत	दो साल की कीमत	दो साल का फ़ायदा
१	२	३	४	५	६
		पौंड	रु० आ० प०	रु०	रु० आ०
सोन खाद एक एकड़ पीछे १० गाड़ी के हिसाब से	कपास ८६० ज्वार ८९३ तुअर २६४	३,४५१	४३ १२ ०	१७२	१२८ ४
बिना खाद	कपास ५३२ ज्वार ६६१ तुअर २३६	२,२३६	३० ५ ०	११८	८७ ११

अकोला फार्म पर कपास और ज्वार की फ़सल पर सोन खाद का उपयोग

	कपास	मूल्य	खाद की क़ीमत	खाद देने से क़ीमत		ज्वार	ज्वार कडबी	मूल्य	खाद से लाभ		
				पौंड	रु०				पौंड	पौंड	रु०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
		रु०	रु०					रु०			रु० आ०
२॥ टन गोबर का खाद	[illegible]९२	७८	९	९०	१८	४८७	२६८५	५४	७०	६८५	११ २
बिना खाद	३०२	६०				४१७	१८००	४३			
२॥ टन सोन खाद	४९८	१००	९	१९६	४९	५३७	२६३५	५७	१२१	६३५	१२ ५

इसी प्रकार सूरत के दो समान खेतों में ज्वार और कपास की फ़सल पर मैले के खाद का प्रयोग किया गया। नतीजा बहुत ही संतोषकारक निकला। गोबर के खाद की अपेक्षा सवाई से ज्यादा फ़सल हुई। और भी कई कृषिक्षेत्रों पर इसके प्रयोग हुए और यह बात निश्चित रूप से प्रकट हुई कि फ़सल के लिये यह खाद एक अमूल्य पदार्थ है। भारतवासी अगर इसे व्यर्थ न जाने देकर इसका सदुपयोग करने लगें तो देश की उपज में आशातीत वृद्धि हो सकती है और करोड़ों रुपयों का प्रतिसाल फ़ायदा हो सकता है।

विष्टा का खाद सचमुच सोन खाद (Golden manure) है। इसका प्रभाव अद्भुत है। यह गई बीती भूमि को बड़ी उर्वरा और उपजाऊ बना देता है। निकम्मे वृक्षों और घासपात को जड़ से मिटा देता है। आपने स्वयं देखा होगा कि गाँव के आसपास की फ़सल, जहाँ मनुष्य मलमूत्र का विसर्जन करते हैं, अक्सर हरीभरी और लहलहाती रहती है। वह दूर के खेतों की अपेक्षा अधिक उपज देती है।

संसार के जुदे-जुदे देशों में मैले या विष्ठा के खाद का उपयोग

जापान

जापान ने चीन की तरह इस बहुमूल्य खाद के महत्व को समझ रखा है। वहाँ बड़े यत्न के साथ इसे इकट्ठा किया जाता है।

इस बात की खास सावधानी रखी जाती है, जिससे छटाँक भर भी यह व्यर्थ न जाने पावे। वहाँ विष्ठा इकट्ठा करने के लिये म्युनिसिपैलिटी की ओर से खास तरह के बर्तन बने हुए रहते हैं। घर घर जाकर पेशाब और विष्ठा इकट्ठा किया जाता है। वहाँ या तो विष्ठा में कोयले की राख और मिट्टी मिलाकर उसका उपयोग किया जाता है या विष्ठा और पेशाब को शामिल कर खूब हिलाया जाता है। फिर उस मिश्रण को कुछ दिन तक सूरज की धूप में रख देते हैं। जब वह सूख जाता है, तब उसके कंडे बना लेते हैं और फिर वे खेतीहरों को बेचे जाते हैं जो खाद का बड़ा ही अच्छा काम देते हैं।

चीन की पद्धति

चीन ने इस सम्बन्ध में सबसे आगे पैर बढ़ाया है। अमेरिका के प्रो० किंग ने "Farmers of forty Centuries" (चालीस शताब्दियों के किसान) नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। आपने यह दिखलाया है कि गत ४००० वर्षों से निरन्तर खेती के होते हुए भी वहाँ की जमीन की उपजशक्ति जैसी वैसी बनी हुई है। इसका कारण यह है कि वह देश एक तोलेभर विष्ठा को भी व्यर्थ नहीं जाने देता। वहाँ शहरों में पायखाने का मैला ठेकों से बेचा जाता है। फिर उसका खाद बनाकर उचित मूल्य में किसानों को दिया जाता है। किसान अपनी खेती में इसका उपयोग करते हैं। इससे चीन की खेती की अवस्था संसार के सब देशों से ज्यादा अच्छी है।

युरोप में विष्ठा के खाद का महत्व

वेल्जियम और फ्रांस ने बहुत पहले से विष्ठा और पेशाब के खाद के महत्व को समझा है। फ्रांस में इसकी दुर्गन्धि दूर करने के लिये या तो कोयला की राख डाली जाती है या गंधक का तेजाब डाला जाता है। फिर उसे गर्मी में सुखा देते हैं और बाद में वह खाद के काम में लाया जाता है।

इंग्लैण्ड में विष्ठा का खाद

इङ्गलैण्ड में भी विष्ठा और पेशाब के खाद का उपयोग किया जाता है। वहाँ विष्ठा और पेशाब को सुखा कर तथा उसकी दुर्गन्धि दूर करने उसमें एक जाति के दर्याई पक्षी की बीटें, जिन्हें गुआनो कहते हैं, डाल दी जाती है और फिर उस मिश्रित खाद का उपयोग किया जाता है।

भारतवर्ष में विष्ठा के दुरुपयोग से हानि

हिन्दुस्थान की बस्ती लगभग इक्तीस* करोड है। एक मनुष्य औसतन रोज ड्योढ या दो रतल भोजन करता है। इस हिसाब से एक दिन में सारे हिन्दुस्थान में लगभग ६० या ६२ करोड रतल अनाज खर्च होता है। अगर इस अनाज का भाव कम से कम प्रति रुपया २० सेर गिना जाये तो सारे हिन्दुस्थान

* इस मर्दुमशुमारी में यह संख्या लगभग ३५ करोड हो गई है।

को एक हजार अस्सी करोड रुपयों के अनाज की हर साल आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्थान का बहुत सा अनाज विदेशों को भी जाता है। कहने का मतलब यह है कि अगर बाहर जाने वाले अनाज को हम गिनती में न लें तो भी हम प्रति साल एक हजार अस्सी लाख रुपयों का अनाज जमीन से लेते हैं। इस खाये हुए अनाज के बहुत से अंश का विष्ठा और पेशाब बनता है। अगर हम इस विष्ठा और पेशाब को इधर उधर व्यर्थ न फेंक कर उसका खाद की तरह उपयोग करें तो हम जमीन की उस छीजन की, जो इतना अनाज बोने से होती है, बहुत कुछ पूर्ति कर सकते हैं। कहा जाता है कि हिन्दुस्थान की जमीन की उपजाऊ शक्ति दिन ब दिन कमजोर होती जाती है। इसका कारण यह है कि हम जमीन से ले तो बहुत कुछ लेते हैं पर वापस उसे यथोचित खुराक नहीं देते। इससे उसकी उत्पादक शक्ति का कम हो जाना स्वाभाविक है। बडे अफसोस की बात है कि हम सोन खाद जैसे बहुमूल्य पदार्थ को व्यर्थ जाने देते हैं। हमने "किसान" के गत वर्ष के ग्यारहवें अङ्क में हिसाब लगाकर दिखलाया था कि विष्ठा को व्यर्थ जाने देकर भारतवर्ष प्रतिसाल लगभग ८० करोड रुपयों की हानि उठाता है। यह मूल्य केवल विष्ठा से बनने वाले खाद का कूँता गया था। अगर इससे फसल में जो फायदा होता है वह भी गिना जाने तो उससे तो यह नुकसान कई अर्ब रुपये तक पहुँच सकता है। कितने दुःख की बात है कि भारतीय किसान

अपनी नासमझी के कारण इतनी बडी राष्ट्रीय सम्पत्ति का नुक़सान कर लेते हैं।

विष्ठा का खाद काम में लाने बावत सूचना

प्रत्येक एकड में विष्ठा का खाद १५ गाडी से लगाकर ५० गाड़ी तक डाला जाता है। निम्न लिखित फसलों के लिये निम्न-लिखित परिणाम मे खाद दिया जाना ठीक होगा।

ज्वार	१० गाडी
बाजरा	१५ गाडी
गेहूँ	२० गाडी
देशी शाक भाजी	२५ गाडी
नींबू केला आदि फल	३० गाडी
विलायती तरकारी	३० गाडी
गन्ना	३५ गाडी

गेहूँ, सांटा, बाजरी, ज्वार, देशी और परदेशी तरकारी के लिये यह खाद अत्यन्त उपयोगी है।

मनुष्य के पेशाब का खाद

बालकों! मनुष्य के विष्ठा की तरह उसके पेशाब मे भी बहु-मूल्य खाद के तत्त्व भरे पड़े हैं। पेशाब का खाद बहुत ही कीमती है। पशुओं के पेशाब से मनुष्य का पेशाब खाद की दृष्टि से अधिक मूल्यवान और उपयोगी है। इसमें वे तत्त्व अधिक हैं जिन से ज़मीन की उत्पादक शक्ति बढती है। अगर आप एक हजार रतल मनुष्य का पेशाब लेंगे तो आपको उसमें निम्नलिखित तादाद में तत्त्व मिलेंगे।

तत्त्वों के नाम	हिस्सा
१—पानी	९३२
२—नाईट्रोजन	४९
३—फॉस्फेट	६
४—पोटेशियम नाईट्रेट और नमक	६
५—सोडा सल्फेट और मेग्नेशिया	७

कहने का मतलब यह है कि मनुष्य का पेशाब बड़ा ही उपयोगी खाद है। मूत्र को सञ्चित कर खाद के काम में लाने के जो तरीके हैं, उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

(१) घर में छोटे छोटे कूँड या हौज बनाये जावें। उनमें बारीक और मुलायम मिट्टी या राख भर दी जावे। घर के सब मनुष्य उसी हौज में पेशाब करें। जब वह मिट्टी या राख पेशाब से तरबतर हो जावे तब उसे फावड़े से निकाल कर खाद की तरह उसका उपयोग किया जावे।

(२) दूसरा तरीका यह है कि खेत में इतना बड़ा हौज बनाया जावे कि जिस में छ मास तक पेशाब किया जा सके। जब वह पेशाब से भर जावे तब इसमें चूने का पानी डाला जावे। चूने के पानी से यह असर होगा कि पेशाब में रहे हुए खाद के तत्व हौज में नीचे बैठ जावेंगे। उन्हें लेकर उनका खाद की तरह उपयोग करना ठीक होगा।

(३) तीसरा तरीका यह है कि रोज का पेशाब घर के इकट्ठे किये हुये कूड़े कचरे पर डाल दिया जाय। इससे कचरा बदबू

देकर सड़ने लगेगा। थोड़े दिनों में उसका बहुत बढ़िया खाद बन जायगा।

(४) चौथा तरीका यह है कि एक हौज बनाया जावे। उसमें जितना पेशाब किया जावे लगभग उतना ही उसमें चूना राख आदि मिला दिये जावें। फिर उस सूखे हुए मिश्रण में भंगी के द्वारा, अगर उपलब्ध हो सके तो आधे से कुछ अधिक सूखा मैला मिला दिया जावे। यह बहुत ही बढ़िया खाद बन जायगा। मूत्र में बड़ी दुर्गन्धि होती है। इसलिये अगर ७० गैलन मूत्र में २५ तोला कसीस मिला दी जाय तो उसकी दुर्गन्धि दूर हो जाती है।

खली का खाद

खली के खाद में पौधे के खाद्य पदार्थ के सभी अंश मौजूद हैं। गोबर के खाद की अपेक्षा खली अपना ज्यादा असर दिखाती है। खली में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, और यही कारण है कि इससे फसल को बहुत अधिक लाभ पहुँचता है।

खली दो प्रकार की होती है। (१) ढोरों को खिलाने योग्य। सरसों, तिल, अलसी, अफ़ीम के दाने, राई बिनौला (कपासिया) मूगफली आदि की खली ढोरों को खिलाई जाती है। हमारी राय में खाने की खली पशुओं को खिला देना चाहिये। इससे दो फ़ायदे होते हैं। खली खाने वाले मवेशी हृष्ट-पुष्ट और ताक़तवर होते और उनके घी की मिक़दार बहुत बढ़ जाता है। खली के खानेवाले मवेशियों के गोबर व पेशाब को खेतों में डालने से

पैदावार भी अधिक होती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं जिस प्रकार का भोजन पशुओं को दिया जायगा उसी प्रकार का खाद्य अंश उनके मल-मूत्र में रहेगा। यहाँ यह बात अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये कि खाने योग्य खली भी ज्यादा दिन रखने से या पानी आदि के लगने स बिगड गई हो तो खाद्य के काम में लाई जा सकती है।

नीम, महुवा, अरण्डी आदि पदार्थों की खली जो पशुओं को नहीं खिलाई जाती, खाद के लिए अच्छा काम दे सकती है।

खाद देने की रीति

खली का महीन चूरा कर खेत में फैला देना चाहिये। कोल्हू की खली में तेल का अश ज्यादा रहता है, इसलिये खली के चूरे में एक चौथाई बुझा हुआ चूना मिलाकर ही काम में लाना चाहिये। इसमें राख भी मिलाइ जा सकती है।

ज्वार, कपास, बाजरा आदि को खली का खाद देना हो तो फ़सल बोने से १५ रोज पहले उसका महीन चूरा खेतों में फैला कर बखर या हैरो चला कर मिट्टी में मिला देना चाहिये। इसका नतीजा यह होगा कि हवा और प्रकाश से फ़सल बोने तक खली पानी में घुलने योग्य हो जायगी।

खली का खाद फलदार पेडो, क़ीमती तरकारियों और फूलदार पौधों को बहुत फ़ायदा पहुँचाता है। आलू, गन्ना, गोभी, बैंगन

आदि को इस खाद से बहुत फ़ायदा पहुँचता है। अब हम जुदी २ जाति की खली के खाद की उपयोगिता पर विचार करते हैं।

अरण्डी की खली का खाद

अरण्डी की खली का खाद बहुत ही बढ़िया और फ़ायदे मन्द होता है। इसका खाद पहले दर्जे का माना जाता है, और यह सस्ता भी होता है। इसमें प्रति सैकडा ४॥ अंश तक नाइट्रोजन पाया जाता है। सभी प्रकार की फ़सलों को इसका खाद दिया जाता है। इस खाद से पौधों में पत्तियों की अधिकता से बाढ़ आती है। परन्तु इस खाद के साथ सिंचाई का पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। इस खाद के देने से फसल खूब हृष्ट पुष्ट मालूम होती है। इससे पत्तों का रंग भी ज्यादा गहरा हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस खाद से मिट्टी के अन्दर रहने वाले, फ़सल को नुक़सान करने वाले जीव जन्तुओं का भी नाश हो जाता है और दीमक से भी फ़सल की रक्षा होती है। बम्बई प्रान्त में गन्ने की फ़सल पर इस खाद का अक्सर उपयोग किया जाता है। वहाँ प्रति एकड़ १५ २० गाडी गोबर के साथ ५०० सेर अरण्डी की खली का खाद दिया जाता है। दूसरी कीमती फ़सलों को प्रति एकड एक हजार सेर तक देते हैं।

महुआ की खली का खाद

यह खली भी मवेशी को नहीं खिलाई जाती। इस खली के खाद से भी फसल को नुक्सान पहुँचाने वाले कीड़ों का नाश हो जाता है।

नीम की खली

हिन्दुस्थान में नीम के पेडों की संख्या बहुत अधिक है। नीम के पेड पर जो छोटे छोटे फल लगते हैं, उन्हें मालवा और राजपूताना प्रान्त में निम्बोली कहते हैं। इन्हीं फलों से तेल निकलता है और बाद में जो खली बच जाती है, उसको खाद के काम में लाते हैं। कहीं कहीं इस निम्बोली को सडा कर भी खाद के काम में लाते हैं। इस खाद की उपयोगिता से खेत के कीडे शीघ्र नाश हो जाते हैं अथवा भाग जाते हैं। यह १० से २० मन फी एकड के हिसाब से काम में लाई जाती है। इस खली के खाद से आलू आदि फसलों का अच्छा फायदा पहुचता है।

करज की खली का खाद

मालवा और राजपूताने में इस खाद की हमेशा कमी रहती है। इसलिये इस कमी को पूरी करने के लिये यत्न करना चाहिये। करज की खली का खाद बहुत ही फायदेमन्द होता है। यह खली, घानी से करज के बीजों से तेल निकालने के बाद, बच जाती है। इस खली का बारीक चूरा कर खाद क काम में लाना चाहिये जिस से वह जमीन में अच्छी तरह मिलाई जा सके। ख्यालू फसल यानो कपास आदि के लिये बरसात के १५ दिन पहले ३०४ मन तक फी बीघे के हिसाब से इसका खाद देना चाहिये। खाद देने के बाद एक वक्त जमीन में मामूली बखर चला

देना चाहिये, जिस से वह जमीन मे अच्छी तरह मिल जावे। कुए के पानी से सींची जाने वाली गन्ने व दूसरी फसलों को इसका खाद बहुत फायदा पहुँचाता है।

जमींदार व बड़े बड़े किसानों को चाहिये कि अपने नजदीक की खाली जमीन में करंज के छोटे दरख्तों को लगायें। इसका तेल भी कई प्रकार के कामों में आता है। लकड़ी पर लगाने में, गाड़ी क पहियों को देने में तथा चर्म-रोग पर इसके तेल का इस्तेमाल किया जाता है।

इन्दौर के प्लेन्ट रीसर्च-इन्स्टीटयूट में हर साल मई के मास मे इसके बीज मिल सकते हैं। जिन सज्जनों को बोने के लिये बीज चाहिये वे उक्त इन्स्टीटयूट से मँगा सकते हैं। इसी इन्स्टिट्यूट म पुराने व नये दरख्तों का मुलाहिजा भी हो सकता है।

बिनौले की खली का खाद

बिनौले की खली दो प्रकार की होता है। एक म बिनौले का कड़ा हिस्सा लगा होता है, दूसरी म वह निकाल दिया गया जाता है। पहली मे कम और दूसरी में ज्यादा उपयोगी अंश रहते हैं। इस खली में नाइट्रोजन का अंश बहुत होता है। मूंगफली की खली से यह खली अधिक पुष्टिकारक होती है। इस में लगभग सात फी सदी नाइट्रोजन पाया जाता है। जो खली खराब हो जाती है उसी का प्रयोग खाद के वास्ते होता है। नहीं तो इस खाद की अपेक्षा पशुओं को खिलाने में ही विशेष लाभ है।

यह खली दस से बीस मन फी एकड़ के हिसाब से खाद के काम में लाई जाती है। छिलकेदार खली १५ से २५ मन फी एकड़ के हिसाब से खाद के काम में आती है।

अलसी और सरसों की खली का खाद

सरसों और अलसी की खली उत्तर हिन्दुस्थान में बहुत होती है। किन्तु इसका अधिकांश भाग विदेशों में भेज दिया जाता है। राई और सरसों की खली में नाइट्रोजन का अधिक हिस्सा रहता है। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में इस खाद का उपयोग किया जाता है।

मूँगफली की खली का खाद

मद्रास में मूंगफली की खली अधिक होती है और अकसर यह मवेशियों को खिलाई जाती है। इसमें सात सैकड़ा नाइट्रोजन होता है। किन्तु यह खली महगी पड़ती है, इसलिये खाद के काम मे बहुत कम लाई जाती है। यही हाल तिल की खली का है। यह भी महगा पड़ने के कारण अकसर खाद के काम में नहीं लाई जाती। हां, कुसुम की खली कहीं कहीं काम में लाई जाता है। इसका उत्तम खाद बनता है। अरण्डी की खली से यह कुछ सस्ती पड़ती है।

आवश्यक सूचना

देशी कोल्हू की खली को राख या चूना मिला कर ही काम में लाना चाहिये। खली का चौथाई हिस्सा चूना मिलाया जाय।

इससे ज्यादा चूना मिलाने से फ़सल को नुकसान पहुँचाने की सम्भावना रहती है।

(२) मशीन की खली को बारीक चूरा करके ही खेतों में डालना चाहिये। चूरा जितना ही महीन होगा, उतना ही जल्दी वह अपना असर दिखायगा।

(३) खाद देने के बाद बख्खर या हैरो चलाकर उसे मिट्टी में मिला देना चाहिये।

(४) सिंचाई का काफ़ी इन्तजाम होने पर ही आबपाशी की फ़सलों को खली का खाद दिया जाना चाहिये।

(५) बिना अनुभव के यह बात नहीं जानी जा सकती है कि किस प्रकार की जमीन में, किस फसल को, किस जाति की खली का खाद ज्यादा फ़ायदा पहुँचाता है। फसल के अनुसार ही खाद का चुनाव किया जाना चाहिये।

(६) खाद के लिये खली का चुनाव करते समय इस बात पर ज्यादा ख्याल रखना चाहिये कि ज्यादा नाइट्रोजन वाली और सस्ती खली खरीदी जाय। हिसाब लगाकर देख लेना चाहिये एक रुपया में कितना नाइट्रोजन मिल सकेगा और एक रुपया में ज्यादा नाइट्रोजन मिले वही खली खरीदी जाय।

देहातों में रहनेवाले अपढ़ काश्तकारों के लिये हिसाब लगाकर देखना मुमकिन नहीं है। इसलिये देहाती काश्तकारों को चाहिये कि उसी खली को खाद की तरह काम में लावें, जो देहातों में ज्यादा और सस्ती मिलती हो।

हरी खाद

भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से हरी खाद का उपयोग *किया जा रहा है। वराह संहिता में तिल, कुलथी आदि की* फ़सलों को फूल आने पर खेत की मिट्टी में गाड़ देने की बात लिखी है। हरी खाद फसल के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। सनई, तिल ग्वार ढेंचा सन आदि फलीदार पौदों को बोकर जब वे बड़े होजावें तब उन्हें जोतकर मिट्टी में मिला देने की क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। इस खाद के लिये वे पौधे बोने चाहिये जो अधिकतर अपनी खुराक वायु से ले सकें। प्रयोगों से पता चला है कि हरी खाद देने से फसल को कम खर्च में नाइट्रोजन दिया जा सकता है, जो कि फसल का जीवन है।

हरी खाद से लाभ

हरी खाद को काम में लाने से हलकी जमीन सुधर जाती है। इससे जमीन में नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नाइट्रोजन के बढ़ने से जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। इसी हरी खाद से चिकनी मिट्टीवाली जमीनें सुधरती हैं। हरी खाद के पत्ते डण्ठल आदि के सड़ने से मिट्टी में रासायनिक परिवर्तन होते हैं और उनका असर मिट्टी पर पड़कर वह भुरभुरी हो जाती है। हरी खाद के लिये बोई जानेवाली फसलें अधिक गहराई पर स्थित नाइट्रोजन, पोटाश और फासफोरस को जमीन के सतह की पास की मिट्टी में जमा करती हैं। इससे

इनके बाद की बोई फसल को तैयार भोजन मिल जाता है। हरी खाद के लिये फसल घनी बोई जाती है जिससे खर पतवार और घास पात को प्रकाश, धूप और हवा नहीं मिल सकती है। इससे खर, पतवारों से फसल की अपने आप रक्षा हो जाती है।

हरी खाद देने के तरीके

हरी खाद देने के कई तरीके हैं—

(१) सन, कुलथी, जंगली नील, मूंग आदि फसलों को खेत में बोते हैं और फूल आने पर उन्हें जोत डालते हैं।

(२) हरी खाद के लिये बोई हुई फसल को काटकर उसका ढेर लगा देते हैं और उसमें पेशाब, गोबर का मिश्रण कर हलका छिड़काव देकर उसे मिट्टी की दो इञ्च मोटी तह से ढक देते हैं। दो सप्ताह में यह सड़कर खाद हो जाता है तब उस खाद को फैलाकर ठण्डा होने देते हैं। यह खाद खेत मे फैला दिया जाता है।

(३) दूसरे खेतों में बोये हुए ढेंचा सन, जंगली नील आदि फलीदार पौधों को उखाड़कर बरसात में गाड़ देते हैं और सड़ जाने पर हल चलाकर उन्हें मिट्टी में मिला देते हैं।

(४) खेत में बोई हुई फसल को काटकर गाड देते हैं और सड जाने पर हल चलाकर उन्हें मिट्टी में मिला देते हैं।

हरी खाद के लिये चुनी जानेवाली फसल में नीचे लिखे हुए गुण होना अत्यन्त आवश्यक है—

(१) पौधे बहुत ज्यादा पत्तेवाले हों (२) तना और टह नियाँ रेशारहित और नरम हों (३) पौधों की जड़ें जमीन में गहरी जाती हों (४) पौधों की जड़ों पर छोटी-छोटी गाँठों की तादाद बहुत ज्यादा हो और (५) पौदा जल्दी बढ़ता हो।

कुछ आवश्यक बातें

(१) हरी खाद को हल चला कर मिट्टी में गाड़ देने से ही काम नहीं चलता। उसको अच्छी तरह से गलाने की ओर भी पूरा ख्याल रखना चाहिये।

(२) हरी खाद दिये हुए खेत में बार बार हल देना जरूरी है। इससे खाद को सड़न में सहायता मिलती है।

(३) कुलथी, चवला, मूंग आदि ज्यादा पत्ते वाली फसलें हरी खाद के लिये उत्तम साबित हुई हैं।

(४) हरी खाद को ऐसे समय मिट्टी में मिलाना चाहिये कि उसके अच्छी तरह से गल जाने के बाद भी दूसरी फ़सल के लिये काफ़ी तरी मिट्टी में बच जाय। स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल समय निश्चित कर लिया जाना चाहिये।

(५) हरी खाद दी हुई फ़सल को सुपरफ़ासफ़ेट देने से पैदावार ज्यादा होती है।

(६) ईख की फसल के लिये कहीं कहीं हरी खाद और सुपर फ़ासफ़ेट बहुत ही फ़ायदेमंद साबित हुआ है।

हरी खाद से गल्ले की फ़सल को बहुत लाभ होता हुआ देखा गया है। हाँ, कानपुर के प्रयोग से यह मालूम हुआ है कि अगर सुपर फासफेट के साथ हरा खाद मिलाकर गन्ने की फ़सल को दिया जावे तो अत्यन्त आशा जनक परिणाम निकलते हैं। कुछ कृषि विद्या विशारदों का कथन है कि इस खाद से उस ज़मीन को अधिक फायदा पहुँचता है जो हलकी रेतीली हो, जिसमें घास और पौधे नाम को भी न उगते हों। इसके साथ ही साथ, यह खाद उस भूमि को भी बहुत लाभ पहुँचाता है जो बहुत समय से खेती करने के कारण अशक्त हो गई हो। मटियार भूमि में भी इसका खाद देने से उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ती है।

मछली का खाद।

मछली का खाद सब स्थानों में प्राप्त नहीं हो सकता। बाढ़ के समय बहुत सी मछलियाँ बह जाती हैं और ऐसे समय में मरी हुई मछलियों के थर के थर नदी के किनारे पर दिखे जाते हैं। इनमें बहुत सी मछलिया मर जाती हैं। मरी हुई मछलियों को सुखा कर कूट लिया जाता है और आवश्यकता होने पर उन्हें पेड़ की जड़ों में डाल कर मिट्टी से ढक दिया जाता है। मछली के खाद से फलों की वृद्धि और फल के स्वाद में उन्नति होती है। आम, नारंगी आदि फल वृक्षों को मछली का खाद

देने से उनके फल बहुत ही मीठे हो जाते हैं। बाग में उगने वाले वृक्षों के लिये मछली का खाद बहुमूल्य खाद है। पर धर्मप्राण हिन्दू किसी भी लाभ के लिये जीव हिंसा करना पसन्द नहीं करेंगे।

हड्डी का खाद

फलदार वृक्षों के लिये हड्डी का खाद अत्यन्त लाभदायक है इस खाद के अन्तर्गत हड्डी का चूरा, उबाली हुई हड्डियाँ, हड्डी की राख आदि प्रधान हैं। हड्डी का खाद बड़ा ही उपयोगी होता है। पर कितने अफसोस की बात है कि इस बहुमूल्य खाद के काम में आने वाली लाखों मन हड्डियाँ विदेश भेज दी जाती हैं। हड्डियाँ कई प्रकार से खाद के काम में लाई जाती है। कई लोग हड्डियों के छोटे छोटे टुकड़े को पौधों की जड़ों में डाल देते हैं। नैपाली लोग तो फलदार वृक्षों के क्यारे में हड्डियों के बारीक बारीक टुकड़े डालते हैं और उनका यह कथन है कि इससे वृक्ष पर बड़े ही मीठे फल लगते हैं। कई कृषि विद्याविशारदों ने अपने अनुभव से यह जाना है कि हड्डी के खाद से फल फूल मीठे होते हैं, फल अधिक लगते हैं और खेत शीघ्र पकता है तथा आरम्भ में इससे फसल कीड़ों से बचती है। पर हड्डी के टुकड़ों का डालने की प्रचलित रीति ठीक नहीं है। इसलिये कृषि विद्या विशारद हड्डी का खाद ३ प्रकार से तैयार करते हैं। प्रथम हड्डियों का चूर्ण (Bone Meal या सड़ी हुई हड्डियों का चूर्ण)। दूसरे जलाई हुई हड्डियों का चूर्ण या हड्डी की राख (Bone Black)। तीसरे, तेजाब में

गली हुई हड्डियाँ जिसे 'सुपर फास्फेट आफ लाइम' (Super phosphate of Lime) भी कहते हैं।

(१) हड्डी का चूर्ण या चूरा जितना ही बारीक होगा उतना ही वृक्षों को लाभ पहुँचेगा। यदि इस चूरे को पशुओं के मूत्र के साथ उपयोग किया जाय तो यह अधिक गुणकारी हो सकता है। यह मटियार भूमि के लिये अत्यन्त लाभदायक है। इसके देने से वृक्ष में अधिक फल की सम्भावना होती है और फल भी मीठे होते हैं।

(२) दूसरी पद्धति यह है कि हड्डी को प्रथम कोयल की तरह जला देते हैं और जलाने के पश्चात चाकियों में पीस कर खाद के काम में लाते हैं। इसे हड्डी की कुनाई अथवा बोन चारकोल (Bone Charcoal) कहते हैं।

(३) हड्डी को बिलकुल राख की सीमा तक जला डालते हैं और पीस कर खाद बनाते हैं। इसको हड्डी की राख अथवा 'बोनएश' कहते हैं।

खाद देने की रीति

हड्डी का चूरा, मैदा कुनाई अथवा हड्डी की राख क्रमश बोने के पहले खेत में डाल देते हैं। इसके पानी में गलने अथवा और किसी भाँति से खराब हो जाने की सम्भावना नहीं रहती।

हड्डी जितनी बारीक पिसी रहती है उतना ही जल्द उसके खाद से फ़ायदा होता है। यदि टुकड़े बहुत बड़े हैं तो उसका

फायदा जब तक हड्डी नहीं सड़ती तब तक देखने में नहीं आता। हड्डी का खाद विशेष करके मीठे फलदार वृक्षों के लिये उपयोगी होता है। हड्डी का खाद देने से वृक्षों में अधिक फल की सम्भावना होती है और फल भी मीठे होते हैं।

हड्डी कैसे जमा की जाती हैं

भारतवर्ष में मैले के खाद के समान हड्डी को छूने में भी किसानों का बड़ी घृणा होती है। इस कारण लोग हड्डी का व्यवसाय करना पसन्द नहीं करते। बहुत सी हड्डी जो खाद के काम में आ सकती है, इसी वजह से उपयोग में नहीं लायी जाती। यदि इसका प्रयोग कहीं किया भी जाता है तो नीच जातियों द्वारा, वह भी कहां २ और नाम मात्र को। जब से हड्डी को बाहर भेजने का व्यवसाय स्थापित हुआ है तब से कितने ही नीच जाति के लोग स्वयं या अपनी औरतों या बच्चों से हड्डी एकत्र करके किसी समीप की आढ़त में ले जाते हैं। वहाँ उनको हड्डी का दाम तौल के हिसाब से लगभग आठ आना फ़ी मन दे दिया जाता है। रेल के स्टेशन के समीप हड्डी के रोजगारियों की आढ़त होती है। वहाँ उनकी ओर से नीच जाति का कोई एजन्ट कुछ वेतन अथवा कमीशन पर नियत रहता है। वह कच्ची मिट्टी की दीवार से घिरे हुए स्थान में हड्डी जमा करता है। बरसात में बहुत स्थानों पर यह व्यवसाय बन्द हो जाता है। एजन्ट इसी स्थान के समीप एक छोटी सी कोठरी अपने रहने के लिये बना लेता है।

सड़ी हुई हड्डी की खाद

हड्डी के चूरे को गोबर, मूत्र, पत्ती आदि के साथ एक गड्ढे में डाल देते हैं और उस गड्ढे को मिट्टी या बालू से ढक देते हैं। लगभग छः सात महीने में हड्डी सड़कर खाद के लायक हो जाती है। इससे पौधों को अति शीघ्र लाभ पहुँचता है। खाली हड्डी के चूरे को खेत में डालने से पौधे को शीघ्र लाभ नहीं पहुँचता। क्योंकि इस तरह हड्डी जल्दी नहीं सड़ती। गड्ढे में मूत्र, गोबर आदि पदार्थों के खार का प्रभाव हड्डी के ऊपर शीघ्र पड़ता है। वह हड्डी को गला देता है। जो हड्डी बिना गली रह जाती है वह हड्डी खेतों में आतप, वर्षा तथा वायु के प्रभाव से धीरे धीरे सड़ा करती है। हड्डी सड़ाने के लिये हवा और नमी चाहिये। गड्ढे में पानी न भरना चाहिये। इसकी गुणकारी गोबर के खाद के समान होनी चाहिये। ४० से १०० मन खाद एक एकड़ के लिये बहुत काफी है। अंग्रेजी में सड़ी हुई हड्डी को 'फरमेंटेड बोन' (Fermented bone) कहते हैं।

राख का खाद

राख का खाद भी बड़ा उपयोगी है, क्योंकि इसमें पौधों के भोजन का अंश—खारा—अधिक रहता है। जलाऊ लकड़ी की राख में प्रति सैकड़ा ५ से ७ अंश तक पोटाश का अंश रहता है। हरे तरह की हरियाली की राख में पोटाश का अंश और भी अधिक रहता है। केले के पत्ते, मका तथा कुसुम के

फायदा जब तक हड्डी नहीं सड़ती तब तक देखने में नहीं आता। हड्डी का खाद विशेष करके मीठे फलदार वृक्षों के लिये उपयोगी होता है। हड्डी का खाद देने से वृक्षों मे अधिक फल की सम्भावना होती है और फल भी मीठे होते हैं।

हड्डी कैसे जमा की जाती हैं

भारतवर्ष म मैले के खाद के समान हड्डी को छूने में भी किसानों का बडी घृणा होती है। इस कारण लोग हड्डी का व्यवसाय करना पसन्द नहीं करते। बहुत सी हड्डी जो खाद के काम मे आ सकती है, इसी वजह स उपयोग म नहीं लायी जाती। यदि इसका प्रयोग कहीं किया भी जाता है तो नीच जातियों द्वारा, यह भी कहां २ और नाम मात्र को। जब से हड्डी को बाहर भेजने का व्यवसाय स्थापित हुआ है तब से कितने ही नीच जाति के लोग स्वय या अपनी औरतों या बच्चा से हड्डी एकत्र करके किसी समीप की आडत म ले जाते हैं। वहाँ उनको हड्डी का दाम तौल क हिसाब से लगभग आठ आना फी मन दे दिया जाता है। रेल के स्टेशन के समीप हड्डी के रोजगारियों की आडत होती है। वहाँ उनकी ओर से नीच जाति का कोई एजन्ट कुछ वेतन अथवा कमीशन पर नियत रहता है। वह कची मिट्टी की दीवार से घिर हुए स्थान में हड्डी जमा करता है। बरसात में बहुत स्थानों पर यह व्यवसाय मन्द हो जाता है। एजन्ट इसी स्थान के समीप एक छोटी सी कोठरी अपने रहने के लिये बना लेता है।

सड़ी हुई हड्डी की खाद

हड्डी के चूरे को गोबर, मूत्र, पत्ती आदि के साथ एक गड्ढे में डाल देते हैं और उस गड्ढे को मिट्टी या बालू से ढक देते हैं। लगभग छ सात महीने में हड्डी सड़कर खाद के लायक हो जाती है। इससे पौधा को अति शीघ्र लाभ पहुँचता है। खाली हड्डी के चूरे को खेत में डालने से पौधे को शीघ्र लाभ नहीं पहुँचता। क्योंकि इस तरह हड्डी जल्दी नहीं सड़ती। गड्ढे में मूत्र, गोबर आदि पदार्थों के खार का प्रभाव हड्डी के ऊपर शीघ्र पड़ता है। वह हड्डी को गला देता है। जो हड्डी बिना गली रह जाती है वह धीरे धीरे खेतों में आतप, वर्षा तथा वायु के प्रभाव से सड़ा करती है। हड्डी सड़ाने के लिये हवा और नमी चाहिये। गड्ढे में पानी न भरना चाहिये। इसकी खबरदारी गोबर के खाद के समान होनी चाहिये। ४० से १०० मन खाद एक एकड़ के लिये बहुत काफी है। अंग्रेजी में सड़ी हुई हड्डी को 'फरमेण्टेड बोन' (Fermented bone) कहते हैं।

राख का खाद

राख का खाद भी बड़ा उपयोगी है, क्योंकि इसमें पौधों के भोजन का अंश—पोटाश—अधिक रहता है। जलाऊ लकड़ी की राख में प्रति सैकड़ा ५ से ७ अंश तक पोटाश का अंश रहता है। हर तरह की हरियाली की राख में पोटाश का अंश और भी अधिक रहता है। केले के पत्ते, मक्का तथा कुसुम के

डंठल, गन्ने के पत्तों की राख मे पोटाश का अधिक अश पाया जाता है। तम्बाकू के डठलो में भी पोटाश बहुतायत मे पाया जाता है। राख के खाद का प्रयोग पौधों के बढ जाने पर किया जाता है। इस समय राख देने से पौधों को भोजन लाभ होता है और पत्तियों पर राख पडने से उनमें कीडे मकोडे नहीं लगते और रोगों से पोधा की हिफाजत हो जाती है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं राख म पोटाश की प्रधानता रहती है और यह बात सब दशों के कृषि विशारदों के अनुभव मे आइ है कि कन्द मूल की (Root crops) जाति की फसलें और उनमें भी चुकन्दर, आलू और तम्बाकू की फसलो को उन खाद से अत्यन्त लाभ पहुँचता है जिस म पाटाश की अधिकता रहती है। इसलिये कुसुम, मक्का, जुआर, गन्ना आदि के डंठलों के ढेर को जला कर उनकी राख को गोबर तथा वानस्पतिक खाद के साथ उपयोग करने से बडा लाभ होता है। अनुभव से जाना गया है कि १००० पौंड सूखे हुए कुसुम तथा ज्वार और मक्का क डंठल की राख में १७ से लगा कर २० पौंड तक पोटाश की मात्रा रहती है। बिनौले के छिलकों की राख भी इस दृष्टि म प्रथम श्रेणी का खाद है। इनमें १८ से लगा कर ३० फी सदी तक पोटाश का अश घुलनशील अवस्था में रहता है।

यह बात नित्य प्रति के अनुभव की है खटमाठे रस वाले फलों के लिये वे खाद विशेष लाभदायक होते हैं, जिन में पोटाश की

प्रधानता रहती है। पोटाश जनित खाद फलों को सुसङ्गठित करता है। इस सम्बन्ध में बङ्गाल के बहरामपुर का अनुभव ध्यान देने योग्य है। वहा के जेल में सैंकडों फल वृक्ष (Lime trees) थे जिनके फल नहीं लगते थे। कई वर्ष इसी तरह बीत गये। आखिर वहा के जेलर से कहा गया कि वह उन्हें राख और हड्डी का खाद दे। जेलर ने धार्मिक दृष्टि से हड्डी का खाद देने से इन्कार किया। इस पर राख के साथ सरसों की खली (Mustard Cake) का खाद उक्त वृक्षों के आस पास क्यारी बना कर डाला गया। इसका परिणाम बडा ही आशाप्रद निकला। दूसरे वर्ष बडे ही लम्बवदार फल निकल आये। फॉसफेट प्रधान खादों (Phosphetic manures) के प्रयोग से वृक्षों में फल फूल आने की ताकत बढती है। इसलिये ऊपर के वृक्षों में हड्डी का खाद भी मिलाया गया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि हड्डी में फॉस्फरस की प्रधानता रहती है। इस सम्बन्ध में भी एक अनुभव का यहा उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिसे हम स्वर्गीय नित्य गोपाल मुकर्जी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "भारत में कृषि" (Agriculture in India) नामक ग्रन्थ से लेते हैं–

"मालदा नामक स्थान में एक आम का पेड था जिसके कभी फल नहीं लगते थे। उसके चारों ओर क्यारी बना कर उसमें हड्डियों के बारीक-बारीक टुकडे रख दिये गये और फिर उन्हें मिट्टी से ढक दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे ही साल उस वृक्ष को बड़े ही मोटे लम्बवदार फल लगे।

अमेरिका के एक कृषि विद्या विशारद ने मक्का की फसल के लिये प्रति एकड़ चार पांच मन राख का खाद उचित बतलाया है। इसे गोबर या मनुष्य के विष्ठा के साथ देना चाहिये।

सब अनुभवों का सारांश यह है कि राख के खाद से पौधों में दूध व रस जमा हो जाते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि उनमें लगने वाले फल तथा दाने मीठे होते हैं।

नगर के नालों का खाद

आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि इस सृष्टि में कोई भी पदार्थ निकम्मा नहीं है। सबका कुछ-न-कुछ उपयोग होता ही है। मनुष्य के विष्टा का कितना बहुमूल्य उपयोग किया जा सकता है इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। इसी तरह नगर की गटरों तथा नालों में बहने वाले घिनौने पदार्थों का भी बहुत ही बढ़िया उपयोग किया जा सकता है।

प्रोफेसर टुटनी ने "निकम्मे पदार्थों का उपयोग" नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने संसार के सभी प्रमुख शहरों की गटरों में बहाये जानेवाले पदार्थों की कीमत का वर्णन किया है। उसमें दिल्ली का भी वर्णन है। आप लिखते हैं — २८२००० जन-संख्यावाले इस शहर के गटरों में बहने वाले घिनौने पदार्थ तथा इसी प्रकार के अन्य निकम्मे और गलित पदार्थों में इतना नाइट्रोजन प्राप्त हो सकता है कि जिससे आवश्यकता के अनुसार कम से कम १०००० एकड़ और अधिक में

अधिक ९५००० एकड जमीन का खाद मिल सकता है। इस अनुमान से सभी निकम्मे पदार्थों के उपयोग का सहज ही हिसाब लगाया जा सकता है और विचारवान लोग इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि प्रति वर्ष कितने करोड़ रुपयों की सम्पत्ति यह देश यों ही खो बैठता है।

संयुक्त प्रान्त के कृषि विभाग के भूतपूर्व डायरक्टर मि० मोलैंण्ड लिखते हैं—"खेत में गटरों के गन्दे पानी के सींचन से बिना अन्य किसी खाद के दिये ही उनमें तम्बाकू और मक्का की फसलें बहुत अच्छी हो सकती हैं।"

तालाब की मिट्टी का खाद

तालाब की मिट्टी भी खाद के काम में आती है। जिस तालाब में गाँव का पानी बहकर जाता है, उसकी मिट्टी तो और भी अधिक लाभदायक है। क्योंकि ऐसे तालाब में गाँव का कूडा कर्कट बहकर जमा होता रहता है। अगर तालाब या मिट्टी में खाद का हिस्सा ज्यादा मिला हुआ हो तो उसे बारीक कर खेत में देना चाहिये और अगर खाद का हिस्सा कम हो तो पहले उसे तालाब की मिट्टी को बारीक करके मवेशीखाने में बिछा देना चाहिये और जब वह ढोरों के पेशाब से तरबतर हो जावे तब उसे छोटे छोटे टोकरों में भरकर खेत में फैला देना चाहिये। इससे फसल को अच्छा फायदा होगा।

चूने का खाद

चूना भी अत्यन्त महत्त्व पूर्ण खाद है। प्राचीन यूरोपीय साहित्य के अवलोकन से मालूम होता है कि प्राचीन रोमन लोग खेती की अच्छी उपज के लिये इसके खाद को आवश्यक समझते थे। युरोप के सुप्रसिद्ध कृषि विद्या विशारद लाउडन महोदय लिखते हैं—"ढोरों के मल मूत्र के खाद के बाद चूना का खाद के रूप में बहुतायत से उपयोग किया जाता है। यद्यपि गोबर के खाद से इसकी गुण प्रकृति नहीं मिलती पर अगर यह बुद्धिमत्ता के साथ उचित रूप में काम में लाया जाते तो इसके फल अधिक टिकाऊ और स्थायी होते हैं। कहीं २ तो यह गोबर के खाद से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।" सर जान रसेल महोदय का कथन है कि पौधों के भोज्य पदार्थ में चूना भी एक आवश्यक पदार्थ है। जिस जमीन में चूने की कमी है उसमें अच्छी फसल का पैदा होना मुश्किल है। जिस भूमि में खट्टापन बढ़ गया हो उसमें चूना डालने से खट्टापन व कडुआपन जाता रहता है। क्योंकि चूना जमीन को मधुर अवस्था में रखता है। यद्यपि कुछ पौधे ऐसे हैं जो अम्लप्रधान यानी खटासवाली जमीन में फलते फूलते हैं पर आर्थिक दृष्टि से उनका कोई महत्त्व नहीं है। चूना जमीन पर उगी हुई वनस्पति पर रासायनिक प्रभाव डालता है और वहाँ रहे हुए नाइट्रोजन को खुला छोड़ देता है जिससे पौधों को बड़ा लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार चूना बहुत शीघ्र

खाद मिली हुई मिट्टी को सड़ी हुई मिट्टी के रूप में बदल देता है और बाद में उसी सड़ी हुई मिट्टी की सहायता से या और किसी युक्ति से वह भूमि में उन वस्तुओं को आकर्षित करता है, जो पौधों को फूलने फलने में सहायता करते हैं। यह कड़ी चिकनी मिट्टी वाली भूमि को नरम करता है और रेतीली तथा कंकरीली भूमि को चिकनी करता है। मिट्टी के छेदों को स्वच्छ करता है और पौधों को शक्ति पहुँचाता है। चूना सुमधुर मिट्टी उत्तम कर उन जीवाणुओं की वृद्धि में सहायता करता है जो जमीन में रहे हुए कारबन (Organic) युक्त द्रव्य को घुलनशील कर पौधों के भोजन में बदल देते हैं। जमीन में अम्लता आ जाने से उसमें रहे हुए उपयोगी जीवाणु उसे फायदा पहुँचाने वाली क्रिया करने में असमर्थ हो जाते हैं। चूना जमीन की अम्लता को नाश कर इन उपयोगी जीवाणुओं की क्रिया को सहायता पहुँचाता है। इससे चूने के खाद से बिगड़ी हुई भूमि भी फल देने लगती है। चूने के खाद से फल स्वादिष्ट और मीठे हो जाते हैं।

खाद देने की रीति और मात्रा

खेत में देने से पहले चूने को पानी छिड़ककर बुझा लेना चाहिये और उसे तुरन्त खेत में बराबर फैलाकर देशी हल तथा काँटेदार हेंगा से पृथ्वी में जोत देना चाहिये। खेत में चूने का ढेर बहुत दिनों तक पड़े देने रहने से चूने का प्रभाव कम हो

जाता है। चूना कई तरह की फसलों के लिये—जैसे नील मूँगफली इत्यादि—बड़ा लाभदायक खाद है। लगभग तीन से चार मन प्रति एकड़ चूना का खाद काफी होता है। यह खाद खेत में बीज बोने से पहले दिया जाता है। जिन खेतों की भूमि में उपजाऊ शक्ति नहीं है उनमें इस खाद के देने से फायदा नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिससे भोजन बनकर पौधों को लाभ हो। प्रति वर्ष चूने का प्रयोग एक ही खेत में न होना चाहिये। चार पाँच वर्ष के बाद आवश्यकता के अनुसार चूने के खाद का प्रयोग करना अच्छा होता है, क्योंकि चूना स्वयं खाद का काम बहुत कम देता है। वह दूसरों से खाद के उपयुक्त पदार्थ निकालता है।

खाद का परिमाण

मद्रास के मिस्टर शवर्ट मन प्रति एकड़ १०० से २०० सेर तक चूने के खाद को देना लाभदायक बतलाते हैं। मिस्टर मुकर्जी एम० ए० ने अपनी प्रख्यात पुस्तक "हैंडबुक आफ इण्डियन एग्रिकल्चर" में तीन मन प्रति एकड़ तक खाद देने की सम्मति दी है।

जिस भूमि में बहुत से पत्ते वृक्षों से गिर कर मिल चुके हों अथवा जहाँ पत्तों की खाद दी गई हो, उस स्थान पर थोड़ा सा चूना देना लाभकारी होगा। हर प्रकार के बीज या छोटे पौधे के निकट चूना नहीं देना चाहिये। कारण यह जला देने वाली वस्तु है।

यदि किसी फसल को सब से पूर्व उत्पन्न करने की आवश्यकता हो तो भूमि को तैयार करने के समय सब से पहले थोड़ा चूने के पानी का खाद उसमें दिया जावे, फिर बीज बोया जाय तो फसल बहुत शीघ्र तैयार होगी। चूना बीज बोने के एक दो सप्ताह पूर्व खेत में देना चाहिये।

चूने के खाद को हर चौथे या छठे वर्ष देना चाहिये। चूना कपास का मुख्य आहार है। इसलिये चूने का खाद कपास को विशेषतया लाभकारी होगा। चौथे वर्ष चूने के खाद का परिमाण प्रथम बार से आधा या चौथाई होगा। चूने का खाद देने के पश्चात् खेत में हल चला देना चाहिये।

पक्षियों की बीट का खाद

कबूतर, मुर्गे, बतक, चिमगीदड़ आदि पक्षियों के बीट का खाद भी बड़ा लाभकारक होता है। यह खाद भी गोबर की तरह गड्ढे में भर कर तैयार किया जाता है। इस अकेला नहीं डालते। दस सेर पानी में पाव भर खाद मिला कर पौधों पर छिड़का जाता है। इस खाद से शाक भाजी, रुई, गन्ना आदि को अच्छा लाभ पहुँचता है।

विशेष खाद

शोरे का खाद

इससे प्राय सभी फसलों को फायदा पहुँचता है। नोना मिट्टी के खाद में शोरे का बहुत अंश रहता है। इसलिये यह मिट्टी खाद के काम में लायी जाती है। आलू, गोभी, चना, गेहूँ, जौ

आदि के लिये शोरा तथा नोना मिट्टी का खाद बड़ा लाभदायक है। दूब की घास तथा अन्य कई प्रकार की घासों के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। पानी में यह खाद अति शीघ्र घुल जाता है। इसलिये खाद देने के बाद सिंचाई नहीं करना चाहिये। सिंचाई करने के बाद खाद देना लाभदायक है। इस खाद के देने से पौधों की दशा अच्छी हो जाती है, उनक अधिक फल, दाने तथा पत्तियां लगतीं हैं। पौधों का रंग गहरे हरे रंग का हो जाता है। इस खाद का नतीजा तत्काल देखने में आता है क्योंकि यह खाद शीघ्र ही पौधों को भोजन कराने योग्य हो जाता है। हां, यहा यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि जहा अधिक पानी हो वहां इस खाद का प्रयोग करना ठीक नहीं, क्योंकि पानी के साथ गल कर उसके बह जाने का डर रहता है। इस खाद में नैत्रजन की मात्रा भी अधिक रहती है। खाद देते समय इसके साथ दुगुनी तथा तिगुनी मात्रा मे राख तथा मिट्टी मिला कर पौधों पर छिड़कना चाहिये अथवा इसे उनकी जड़ म देना चाहिये। एक एकड़ में एक से तीन मन तक खाद काफी है। लगभग चालीस मन मिट्टी स इतने खाद का काम चल सकता है। शोरे के खाद में १२ फी सदी नाइट्रोजन और ४ फी सदी पोटाश की मात्रा रहती है।

पोटेशियम सल्फेट

इस खाद का प्रयोग अकसर उन खेतों म किया जाता है जो दुमट मिट्टी वाले होते हैं। जौ, गेहूँ आलू, गोभी, टोमैटो, मिर्च,

तम्बाकू आदि फसलों को इस से लाभ पहुँचता है। शोरे की तरह इसके लिये, पानी के साथ बह जाने का डर नहीं रहता। अतएव खेत बोने के पहले भी उसे तैयार कर इसे डालते हैं। पेड़ों की जड़ के पास खुर्पी से खोद कर भी इसे देते हैं। एक एकड़ के लिये एक से तीन मन तक खाद काफी है।

जिप्सम का खाद

यह पदार्थ दक्षिण भारत के ट्रिचनापली, नलोर तथा राजपूताने के नागौर नामक भाग में तथा मध्य भारत के कुछ स्थानों में पाया जाता है। जले हुए जिप्सम का सिमेन्ट की तरह उपयोग किया जाता है। फलीदार फसल (Leguminous) के लिये इसका खाद अत्यन्त उपयोगी है।

प्राचीन ग्रीक और रोमन लोग भी इस खाद का महत्व समझते थे। अमेरिका और यूरोप में आलू और साग की खेती में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। हिन्दुस्थान की मटियार भूमि में इसका खाद विशेष लाभप्रद हो सकता है। यह खाद अरहर, चना और अन्य दाल वाली फसलों को (Pulse Crops) बड़ा लाभ पहुँचता है। आलू के लिये भी यह बड़ा हितप्रद सिद्ध हुआ है।

जिस ज़मीन में चूने का अंश कम होता है उसमें चूना पहुँचाने के निमित्त इस खाद का प्रयोग किया जाता है। इसे ज़मीन में देने से पौधों का भोजन अधिक बनता है। क्योंकि

जमीन के भीतर के खनीज पदार्था पर यह बडी तेजी से असर करता है। इसके मिलाने से जमीन की उवराशक्ति अच्छी हो जाती है। चिकना मिट्टी वाले खेतों मे, जिन म मिट्टी के अणुओं के बहुत समीप होने क कारण हवा भीतर नहीं जा सकती, यह खाद देने स मिट्टी के बडे बड ढेल बिखर जाते हैं और इस से उन खेतों की जमीन मे हवा का प्रवेश होने लगता है। इससे धरती खुल जाती है। उसका बल बढता है। उसमें उत्पन्न होने वाले पौधे हृष्ट पुष्ट होते हैं।

यह खाद ऊसर जमीन का उपजाऊ बनाने के लिये तो बडा ही बहुमूल्य है। बडे-बडे कृषि विद्या विशारदों ने इस सम्बन्ध में इसकी उपयोगिता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

पाठक जानते हैं कि ऊसर भूमि म कोई फसल भली प्रकार फल-फूल नहीं सकती। क्योंकि इस भूमि मे एक प्रकार का खार (सोडियम कार्बोनेट) रहता है जो पौधों के लिये जहर का काम करता है। जिप्सम का खाद देने से यह खार ऐसी दशा में बदल जाता है जिससे वह पौधों को हानि नहीं पहुँचा सके। ऊसर जमीन को यह खाद हरियाली से हरा भरा कर देता है।

खेत के जुत जाने और बोने के लिये तैयार होने पर इसे अच्छी तरह चूर-चूर करके मिट्टी तथा राख में मिला कर जमीन में बराबर फैला देना चाहिये और उसके पश्चात खेत बोना चाहिये।

अमोनिया सलफेट

यह एक प्रकार का कृत्रिम खाद है। यह अंग्रेजी खाद बेचनवालों से प्राप्त हो सकता है। इसका रंग मटमैला होता है। इसमे फीसदी २०अंश नाइट्राजन रहता है। इससे गेंहूँ,पौंडा, ऊख आदि फ़सल को बड़ा फायदा पहुँचता है। जहाँ जमीन की कमजोरी के कारण गन्ना पैदा नहीं होता, वहाँ इस खाद के देने से धरती मजबूत हो जाती है और उसमें ऊख या गन्ना पैदा होने लगता है।

खेत मे डालने के पहले इस खाद को बारीक़ कर लेना चाहिये। यह खाद खली के खाद की तरह पौधों की जड़ों मे दिया जाता है। इस खाद को देते समय उसमे कुछ मिट्टी और खरा मिला देना चाहिय। खरीफ की फसल का यह खाद विशेष लाभ पहुँचाता है। मक्का की फसल के लिये यह खाद अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसे खली और गोबर के साथ भी उपरोक्त रीत से दे सकते हैं।

हाँ, इसके सम्बन्ध मे एक बात ध्यान मे रखना चाहिये यह यह कि जिस खेत मे चूने का खाद दिया गया हो, उसमें इस खाद को कदापि नहीं देना चाहिये। क्योंकि चूना और अमोनिया के सयोग से वायु उत्पन्न होती है और उसके फल-स्वरूप अमोनिया नष्ट हो जाता है।

यह खाद फी एकड़ एक से तीन मन तक दिया जा सकता है।

खेत की जुताई

अच्छी फसल पैदा करने के लिये जितना महत्व योग्य और अच्छा खाद देने का है उतना ही महत्व अच्छी और गहरी जुताई करने का भी है। क्योंकि यदि अच्छा खाद डाला जाय पर उसका मिट्टी के साथ ठीक मेल न हो सके तो उससे पूरा नतीजा देखने में न आ सकेगा। खाद का पूरा फल अच्छी जुताई से मिलता है। गहरी जुताई का असर बहुत पड़ता है। उसी से खाद का काम निकलता है। केवल जुताई करने और बिल्कुल खाद न देने से भी कभी-कभी भूमि की उपज शक्ति में उन्नति नहीं जाती है। नाना प्रकार की फसलें और उनकी बाढ़ तथा उपज पर जुताई का अच्छा असर पड़ता है। उचित समय पर अच्छी रीति से जोती हुई और तैयार जमीन में जब उत्तम खाद का योग मिलता है तो वह सोने में सुगन्धि का काम करता है। इससे पैदावार बड़ी ही अच्छी होती है।

जुताई से कई प्रकार के लाभ हैं। (१) इससे कठिन मिट्टी नरम हो जाती है और पौधों की जड़ों को अन्दर घुसने और फैलने में बड़ी आसानी होती है।

(२) जमीन में वायु और पानी सरलता से घुस जाते हैं और पौधों की जड़ों तक पहुँच जाते हैं। जमीन में रहे हुए फसल के लिये लाभकारी कीटाणुओं को प्राणप्रद वायु सरलता से मिलने लगता है, जिससे वे फलते-फूलते हैं और पौधों को लाभ पहुँचाते हैं। पौधों को नुकसान पहुँचानेवाले कीटाणुओं के जाले नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं तथा जमीन में रही हुई कई इलियाँ जमीन के बाहर निकल आती हैं और वे पक्षियों की खुराक बन जाती हैं। कहने का मतलब यह है कि गहरी जुताई से जमीन की स्थिति बहुत ही अधिक सुधर जाती है और फसलों को फलने-फूलने के लिये बहुत अनुकूलता हो जाती है। ऊपर हमने गहरी जुताई के लाभों का दिग्दर्शन कराया है। पर इस विषय में कुछ अधिक विस्तार की आवश्यकता है। प्रिय विद्यार्थियो! तुम्हें याद रखना चाहिये कि जिस प्रकार मनुष्य को हवा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अच्छी फसल के लिये भूमि में हवा के प्रवेश की आवश्यकता है। भूमि के अन्दर वायु क्यों पहुँचाना चाहिये। यह बात तब समझ में आ सकती है, जब हम इस बात पर विचार करें कि किसी भी घर का हवादार होना क्यों आवश्यक होता है। जिस प्रकार घरों के लिये स्वच्छ हवा की आवश्यकता होती है ठीक उसी तरह भूमि को भी हुआ करती है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि भूमि ठोस नहीं है। वह छोटे-छोटे कणों से बनी है और उन कणों के बीच में खाली जगह है। इसका तात्पर्य यह है कि भूमि में बहुत ही बारीक छिद्र हैं जो हमें,

दिखाई नहीं देते। जुताई इसलिये भी की जाती है कि ये छिद्र बड़े हो जावें, जिससे भूमि भी बराबर सुधर जाय और उसमें हवा खूब अच्छी तरह खेलती रहे।

पूसा म वैज्ञानिक जाँच स यह बात मालूम हुई है कि बरसात के दिनों म भूमि म अगर वायु अच्छी तरह न पहुँचे तो उसका भूमि की बनावट पर बहुत बुरा प्रभाव गिरता है। ई० सन् १९१० म इस विषय क प्रयोग किये गये। गे* के खुद खेता में पानी इकट्ठा किया गया जिसम कि जमीन में बराबर हवा न पहुँच सके। इसका परिणाम यह हुआ कि गेहूँ की पैदावार में प्रति एकड़ लगभग १२ मन की कमी हो गई।

इसक अतिरिक्त भूमि मे वायु के प्रवश म और भी कई तरह के लाभ होते ह। फलीदार पौधा का जड़ा पर जो गाँठें होती हैं ये हवा म नाइट्रोजन ग्रहण कर पोधों क लिय खुराक तैयार करती हैं। इन जड़ों की गाँठा का मुख्य कार्य हवा म नाइट्रोजन लेकर उस भूमि म इकट्ठा करना है। इस क्रिया म खुराक मिलने के कारण फसल को लाभ पहुँचता है।

हिन्दुस्तान में मिट्टी की बहुत सी ऐसी किस्में ह, जिन म वायु स्वभावत नहीं पहुँचती। इनको उपयुक्त बनाने क लिये इनका अच्छी तरह जोता जाना आवश्यक है।

भूमि म शुद्ध वायु पहुँचान क अतिरिक्त गहरी जुताई से और भी अनेक प्रकार के लाभ हे, जिन में से कुछ का निम्न हम ऊपर कर चुके हैं। इस गहरी जुताई म पौधा की जड़ें बहुत गहरी

जाती हैं और इसमे वे अवर्षण (Drought) का मुकाबला बड़ी अच्छी तरह कर सकती हैं, क्योंकि ज्यादा गहरी हो जाने से उन्हें स्वाभाविक रूप मे तरी भी मिलती जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जमीन की गहरायी ज्यों-ज्यों बढती जाती है, त्यों-त्यों उसकी तरी भी बढती जाती है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, फसल में लगने वाले कीड़े फसल के बाद भी जमीन के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और वे नाशक-धारक जाने बना कर रहने लगते हैं। गहरी जुताई मे जब नीचे की मिट्टी ऊपर आता है तो वे भी जमीन की सतह पर आजाते हैं और सूर्य के प्रकाश के कारण मर जाते हैं। इससे अगली फसल को उन से कम हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। कहने का सारांश यह है कि गहरी जुताई से फसल को इतना अधिक लाभ पहुँचता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

गरमी के मौसम की जुताई

कृषि विज्ञान वेत्ताओं का मत है कि गरमी के मौसम की जुताई आगामी फसल के लिये बहुत फायदेमन्द होती है। खास कर गेहूँ आदि रब्बी की फ़सलों के लिये, यदि खेत बहुत ही कमजोर न हुआ, तो खाद डालने की अपेक्षा गरमी के मौसिम की जुताई बहुत अच्छी समझी जाती है। यह जुताई किसी मिट्टी पलटने वाले हल – जैसे मेस्टन, वाट्स या पंजाब आदि से खूब गहरी कर देना चाहिये, जिस से खेत उपजाऊ हो जाय।

संयुक्त प्रान्त के कृषि विभाग ने भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे बहुत से अनुभव किये हैं और उनसे सन्तोषजनक फल भी मिले हैं। कई जगह जहाँ खेतों में गरमी की मौसिम में जुताई की गई थी वहाँ गेहूँ की पैदावार में फी एकड़ ५ से ९ मन तक बढ़ती हुई। इस बढ़ती से फी एकड़ कितना ज्यादा फायदा हुआ, इसका हिसाब किसान खुद लगा सकते हैं। इन प्रयोगों से यह भी मालूम हुआ है कि पैदावार और भूसे में बढ़ती होने के साथ ही साथ इससे अन्न का दाना भी मोटा पैदा होता है। इसके अतिरिक्त इससे और भी कई फायदे होते हैं, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे।

ऐसे बहुत से किसान हैं जो ज्वार, मूंगफली, कपास या गन्ना आदि की फसलें कट जाने के बाद अपने खेतों को गीला कर अथवा उस समय की वर्षा से फायदा उठा कर मिट्टी पलटने वाले हलों से उन्हें जोतते हैं। साधारण तौर पर यह रिवाज है कि बरसात शुरू होते ही जब जमीन जुतने लायक हो जाती है तब ही खेतों को जोतना शुरू किया जाता है। पर यह रीति अच्छी नहीं है।

बरसात शुरू होने पर जब पहली जुताई की जाती है, तो बरसात का बहुत सा पानी बह जाता है, क्योंकि उस समय जमीन कड़ी रहती है और इससे वह ज्यादा पानी सोख नहीं पाती। इसके सिवाय एक बात और है। किसानों के पास उस समय बहुत काम रहता है। रब्बी के खेतों को जोतने के अलावा उन्हें खरीफ के खेत भी उसी समय तैयार करके बोने पड़ते हैं। इससे गेहूँ के

खेतों का निकास भी ठीक नहीं होने पाता, जो कि बहुत जरूरी होता है। गेहूँ के खेतों को बराबर न करने और उनके पानी के निकास को ठीक न करने से फसल को भारी हानि पहुँचती है। इसलिये हर एक काश्तकार को चाहिये कि वह जाड़ों के दिनों में ही, जब कि उसके पास ज्यादा काम नहीं रहता, अपने खेतों को ठीक कर ले।

जिस जमीन में गेहूँ बोना हो उसे पहले की फसल (जैसे गन्ना, ज्वार, कपास आदि) से खेत खाली हो जाने के बाद साफ करके खूब अच्छी तरह जोत डालना चाहिये। यदि इस समय बारिश हो जावे तो अच्छा है। अगर बरसात न हो तो नहर, नालों, तालाबों या कुओं से खेत को सींच डालना चाहिये, जिससे कि खेत में हल खूब गहरे पैठ सकें व जुताई में ज्यादा तकलीफ न हो। यह बात जरूरी है कि कुए से आबपाशी करने से काश्तकार को ज्यादा खर्च होगा, पर यह खर्च उस फायदे के मुकाबले में, जो ज्यादा पैदावार होने से होगा, कुछ भी न होगा।

ऊपर बतलाई हुई रीति से जनवरी, फरवरी, मार्च या अप्रैल में खेत को जोत डालने से बहुत से फायदे होते हैं। गर्मियों में खेत के जुतने से मिट्टी बहुत गहराई तक पाला हो जाती है और बरसात का बहुत सा पानी, जो जमीन की बिना जुती हुई हालत में इधर उधर बह जाता है, खेत ही में समा जाता है और आगामी फ़सल को पानी की कमी से ज्यादा नुकसान नहीं पहुँच पाता है। ऐसे खेतों में रब्बी की बुआई के वक्त खेत तैयार करने के लिये

बारिश न भी हुई तो भी बोनी का काम शुरू किया जा सकता है, क्योंकि समय पर जुताई करने से इस समय मिट्टी मुलायम रहती है और उसमें नमी भी होती है।

जो खेत गरमी के दिनों में नहीं जोते जाते, उनमें रब्बी के फसल के वक्त बिना सिंचाई के बीज बोना कठिन हो जाता है। गरमी की जुताई से यह बहुत बड़ा फ़ायदा होता है कि उसमें आगामी फसल को कीड़े मकोड़ों से नुक़सान नहीं होने पाता। क्योंकि जुते हुए खेत पर तेज धूप पड़ने से सब कीड़े-मकोड़े और उनके अण्डे बच्चे, जो कि आने वाली फसल को नुकसान पहुँचाते हैं, मर जाते हैं। हम तो काश्तकारों को दावे के साथ कह सकते हैं कि अगर उनकी फसल को कीड़ा या दीमक ज्यादा सताते हो तो वे गरमी की जुताई के प्रयोग को जरूर आजमा कर देखें। उन्हें इस प्रयोग से साफ़ तौर पर मालूम हो जायगा कि गरमी की जुताई से कितने फायदे होते हैं। हां, इसी सिलसिले में उन्हें एक काम और करना चाहिये। वह यह कि खेत के जुतने के बाद उसमें की फसल की जड़ें, जिनमें अकसर कीड़े व उनके अण्डे बच्चे छिपे रहते हैं, इकट्ठी करके जला दी जावें। गरमी की जुताई से खरपतवारों के बीज, जो फ़सल को बहुत हानि पहुँचाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

जुते हुए खेत पर गरमी का असर पड़ने से बहुत फायदे होते हैं। पहला फायदा यह है कि खेत में की खुराक जो पानी में घुलने वाली हालत में नहीं होती, ऐसे रूप में हो जाती है कि

पौधा उसे आसानी से खींच सके। दूसरा फायदा यह है कि मिट्टी में भुरभुरापन आजाता है, जिससे आगामी फसल को लाभ होता है। तीसरा फायदा यह है कि जुती हुई जमीन में हवा पैठती है और वह उसकी उपज-शक्ति को बढ़ाती है। चौथा फायदा यह है कि गहरी जुताई से जमीन गहराई तक मुलायम हो जाती है, जिस से पौधे की जड़ें दूर दूर तक जमीन में फैल कर अपनी खुराक ज्यादा मात्रा में ले सकता हैं। इस प्रकार ज्यादा खुराक मिलने से पौधा मजबूत रहता है और उसे बारिश के साथ चलने वाली तेज हवा नुकसान नहीं पहुँचा सकती।

हम ऊपर कह आये हैं कि गेहूँ के लिये खाद देना उतना उपयोगी नहीं, जितना कि जुताई करना। कई तजुर्बों से यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि केवल अच्छी जुताई करने ही से अच्छी पैदावार ली जा सकती है। ज्यादा खाद देने से पौधे बहुत ऊँचे बढ़ कर गिर जाते हैं लेकिन यह बात केवल अच्छे खेतों के लिये है। जो खेत उम्दा मिट्टी वाले नहीं होते, उनमें जुताई के साथ थोड़े खाद की भी जरूरत होती है। संयुक्त प्रान्त में साधारण तौर से ईख के बाद गेहूँ बोया जाता है। ईख में काफी खाद डाला जाता है, इसीलिये ईख के बाद गेहूँ की पैदावार अच्छी होती है, क्योंकि ईख में डाला हुआ कुछ खाद उसी फसल के काम में नहीं आ सकता। हम यहां यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि अगर गेहूँ के पहले फसल में खाद न दिया गया हो अथवा खेत कमजोर हो तो केवल जुताई ही से काम नहीं

चल सकता। ऐसी हालत में १० से १२ मन तक फी एकड़ अरण्डी की खली, हरा खाद, हड्डी का चूरा अथवा गोबर का खाद डालकर खेत की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाना चाहिये।

गेहूँ आदि रब्बी की फसलों के लिये हमने जो गर्मी की जुताई के फायदे बतलाये हैं ठीक उसी तरह के फायदे इस जुताई से कपास की फसल को भी होते हैं। कपास में भी ज्यादा खाद देने से पौधे की शाखें व पत्ते बढ़ जाते हैं और गूलर (ढेंढ़) कम आते हैं। इसलिये थोड़े से गोबर के सड़े हुए खाद को घास व पत्तों के सड़े हुए खाद के साथ खेत में डालने व गर्मी की मौसिम में खूब अच्छी जुताई करने पर ही पूरी पैदावार ली जा सकती है।

साधारण तौर पर कपास गेहूँ के बाद बोया जाता है। गेहूँ के कटते ही खेत को सींच कर हल से जोत डालना चाहिये। आम तौर पर किसान बरसात शुरू होने पर अपने खेत को जोत कर उसमें कपास बो देते हैं। ऐसा करने से पैदावार बहुत कम होती है और फसल को कीड़े मकोड़े भी ज्यादा हानि पहुँचाते हैं।

खास कर जेठ के महिने मे सिंचाई करके खेत में कपास बो देने से कपास की पैदावार अधिक होती है। पर यदि बरसात शुरू होने पर ही कपास बोना हो तो गेहूँ आदि की फसल कट जाने के बाद, जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी, खेत को साफ करके जोत डालना चाहिये। अगर गर्मी की मौसम में अच्छी

जुताई की गई तो तीन मन से ५ मन की एकड़ तक पैदावार बढ़ाई जा सकती है। संयुक्त प्रान्त के कृषि—विभाग के कई अनुभवों से भी यही परिणाम निकले हैं।

भूमि में वायु प्रवेश के अन्य उपाय।

हमने ऊपर यह दिखलाया है कि गहरी जुताई से भूमि में वायु प्रवेश का मार्ग बहुत कुछ खुल जाता है और इससे फसल को बहुत ही लाभ पहुँचता है। पर यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि भूमि में वायु प्रवेश के लिये केवल मात्र जुताई ही साधन नहीं है। वैज्ञानिकों ने इसके और भी उपाय बतलाये हैं। भारतवर्ष तथा अन्य बहुत से देशों में बहुत से लोग इस बात का पता लगाने में बहुत जोरों से लगे हुए हैं कि भूमि को हवादार बनाने का सबसे अच्छा उपाय कौनसा है। अमेरिका का युक्तप्रदेश इसमें अग्रगण्य है। ओरीगोना में महाशय केनन ने वाशिंगटन के कार्नेजी इन्स्टिट्यूशन में सुप्रसिद्ध कृषि विद्या विशारद मि० क्लीमेन्ट्स ने और जोन्स हापकिन्स विश्व विद्यालय में डा०लिविंग्स्टोन ने ऐसी बहुत सी नई बातों को ढूढ निकाला है जिनसे हवा को भूमि में पहुँचाने में सहायता मिले। ग्रेट ब्रिटेन की राउथमस्टेड और लोंगास्टन प्रयोग शालाओं में भी इस बात का पता लगाया जा रहा है। किसी न किसी समय ये बातें बहुत ही सहायता दे सकेंगी और यह मालूम होता है कि कृषि में इनसे भारी उन्नति होगी।

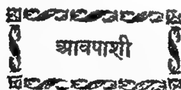
बीज का चुनाव

अच्छी फसल पैदा करने के लिये योग्य खाद और गहरी जुताई के साथ साथ निरोग और पुष्ट बीजों की भी आवश्यकता है। अमेरिका और युरोप में इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। वहाँ बीज बेचने वालों की दुकानें हैं जो अच्छे से अच्छे चुने हुए बीजों का किसानों में प्रचार करतीं हैं। पर हिन्दुस्थान में यह बात नहीं है। हमने देखा है कि कई वक्त बेचारे निर्धन किसान खराब से खराब बीज बोने में मजबूर होते हैं। इससे उनकी खेती पर बहुत बुरा असर पड़ता है। क्या ही अच्छा हो अगर यहाँ भी युरोप और अमरिका की तरह निरोग और पुष्ट बीजों की दुकानें खोली जायँ। इस सम्बन्ध में सहकारी समितियों ने कुछ कार्य किया है। पर वह इतने थोड़े परिमाण में है कि उनसे अधिकांश किसान फायदा नहीं उठा सकते। हम समझते हैं कि बीजों को प्राप्त करने में अगर "चुनाव पद्धति" से काम लिया जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है। "चुनाव पद्धति" का मतलब हमारे बहुत से पाठक नहीं समझे होंगे अतएव हम उसका खुलासा करना आवश्यक समझते हैं। पहले पहल जिस फसल को वे बोना चाहें—

उसके बीजों में से सबसे अच्छे निरोग और पुष्ट बीजों को चुनें और उन बीजों को वे अपने खेत बोवें, और उसमें योग्य खाद देने तथा सिंचाई करने का पूरा पूरा ध्यान रखें क्योंकि इनका बीजों की बनावट पर बहुत असर गिरता है। जब फसल आवे तब खेत में से निरोग और पुष्ट भुट्टों को वे छाट लें और उनका बीज निकालें। उन बीजों में से भी वे अच्छे से अच्छे बीज अलग करें और उन्हें फिर पहले की तरह बोवें। भुट्टा या फल आने पर फिर अच्छे बीजों का चुनाव करें। इस प्रकार कुछ वर्षों तक करते रहने पर बहुत ही अच्छे बीजों की एक जाति पैदा हो जायगी और उन्हें बोने से फसल की काया पलट हो जायगी। पश्चिमी देशों ने इसके अनुभव किये हैं और उन्हें इस कार्य में बड़ी सफलता मिली है। हम यहाँ पर जर्मनी का एक उदाहरण देते हैं। पाठक जानते हैं कि कुछ वर्षों पहले मनुष्य गन्ने या खजूर को छोड़कर किसी चीज से शक्कर नहीं बनाते थे। गन्ना अधिकतर उष्ण देशों में होता है। युरोप के ठंडे देशों में उसकी कम पैदायश होती है। इसलिये गरम देशों से युरोप को शक्कर जाया करती थी। इसमें अधिक खर्च हुआ करता था और दिक्कत भी उठानी पड़ती थी। जब जर्मनी की सरकार ने यह देखा कि देश में शक्कर की बहुत अधिक माँग है और गन्ने की खेती के लिए वहाँ की आबहवा अनुकूल नहीं है तो उसने बड़े बड़े कृषि विद्या-विशारदों की एक सभा की और उनसे यह कहा कि गन्ने के सिवाय किसी ऐसे पदार्थ से शक्कर निकालने की योजना की जाय जो जर्मनी में आसानी से

पैदा हो सके। बड़े बड़े कृषि विद्या-विशारद इस खोज में लगे। बड़ी खोज के बाद उन्हें मालूम हुआ कि गन्ने के अतिरिक्त और भी बहुत से पेड़ों में शक्कर का अंश होता है। परन्तु वह इतना कम होता है कि उसे निकालने का खर्चा बर्दाश्त कर मनुष्य उसे लाभ के साथ बाजारों में नहीं बेच सकता। इस पर सरकार ने उनसे कहा कि आप लोग कोई ऐसी युक्ति निकालिये जिससे उन पेड़ों में रहा हुआ शक्कर का भाग अधिक बढ़ाया जा सके। वैज्ञानिक इस बात की खोज करने लगे। उन्होंने चुकन्दर के झाड़ को लिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चुकन्दर में शक्कर का भाग बहुत कम होता है। वे उसे बढ़ाने का प्रयत्न करने लगे। अन्वेषण करते करते उन्हें यह मालूम हुआ कि चुकन्दरों में शक्कर एक ही परिमाण में नहीं होती। किसी में कम होती है और किसी में अधिक। चुकन्दर का बीज पहले बिना जाँच पड़ताल किये हुए सभी भाँति मिलवा बो दिया जाता था जैसा कि हमारे यहाँ के किसान नाजों को मिलवा बो देते हैं। इन वैज्ञानिकों ने रासायनिक विश्लेषण द्वारा जाँच पड़ताल करके जिन चुकन्दरों में शक्कर का भाग कम था उन्हें अलग बोया और जिनमें अधिक था उन्हें अलग। जिस रीत में अधिक शक्कर वाले चुकन्दर बोये गये थे उनके फलों की जाँच करने पर यह मालूम हुआ कि साधारण चुकन्दरों की अपेक्षा इनमें शक्कर का अधिक हिस्सा है। पर इन चुकन्दरों में भी शक्कर का समान अंश नहीं मिला। किसी में ज्यादा और किसी में कम मिला। फिर अधिक शक्कर वाले चुकन्दर

छाँट कर बोये गये। इनमें और भी अधिक परिमाण में शकर का अंश मिला। इस प्रकार की क्रिया प्रक्रिया से निरन्तर दिन चुकन्दरों में शकर का अंश बढ़ाया गया। जब वह इतना अधिक बढ़ गया कि उनमें से शक्कर निकाल कर बेचने से उचित लाभ होसके, तब उनका बीज चारों ओर देश के स्थानों में बाँटा गया। वर्षों के परिश्रम और तजुर्बे के पीछे जर्मनी ने इस व्यवसाय में खासी तरक्की करली। उसका प्रभाव युरोप के अन्य देशों पर भी पड़ा। इस समय वहाँ ५ लाख एकड़ भूमि में चुकन्दर बोया जाता है। एक एकड़ में लगभग ४०० मन चुकन्दर पैदा होता है। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ५० वर्ष पहले मुश्किल से १०० मन चुकन्दर से ५ मन शकर निकलती थी। आज उसका परिमाण बढ़कर २० मन हो गया है। वैज्ञानिकों ने विज्ञान के बल से चुकन्दरों में शकर के अंश को चौगुना कर दिया और इस भाँति देश की सम्पत्ति में आशातीत वृद्धि की।



खेती की उन्नति के लिये आबपाशी की कितनी आवश्यकता है, यह बतलाने की जरूरत नहीं। दूसरे शब्दों में अगर हम यह कहें कि आबपाशी कृषि उन्नति का जीवन है, तो इसमें तिलमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी। पाश्चात्य देशों में कुछ वर्षों के पहले

जो लाखों एकड़ पड़त जमीन पड़ी हुई थी, वह आबपाशी के द्वारा हरी भरी और उपजाऊ बना दी गई है। हिंदुस्थान में अकाल बहुत पड़ते हैं। इन अकालों का कारण, जहाँ तक हम समझते हैं, वर्षा की कमी के बजाय वर्षा की अनियमितता अधिक है। हिन्दुस्थान के एक नामी अर्थशास्त्रज्ञ का कथन है कि "हिन्दुस्थान में वर्षा काफी होती है, पर वह कभी २ अनियमित रूप से हो जाती है। इसी से अकाल पड़ते हैं। अगर जल संचय कर आबपाशी करने का यहाँ उचित प्रबन्ध हो तो इन अकालों की संख्या और भीषणता में बहुत कमी आसकती है।"

आबपाशी का प्रश्न अति महत्वपूर्ण है। इसमें कई प्रकार की जटिलताएँ भी हैं। कहीं २ के कुछ किसानों का कथन है कि फसल के लिये कुवे का जल (Well-water) हानिकारक होता है। पंजाब और यू०पी० के कई प्रान्तों के अनुभवी किसानों का कथन है कि जहाँ बहुत समय से नहरों के द्वारा आबपाशी (Canal Irrigation) का जारहा है, वहाँ कुवे के जल द्वारा आबपाशी करने से विशेष लाभ होता हुआ दिखाई दिया है। साथ ही यह भी पाया जाता है कि वर्षा ऋतु के आरम्भ में फसल को जैसा फायदा वर्षा के पानी से पहुँचता है, वैसा न तो नहरों के जल से पहुँच सकता है और न कुओं के जल से। अगर कुवे नहर तथा तालाब का जल किसी विशेष स्थिति में फसल के लिये हानिकारक होता है और वर्षा का जल लाभप्रद सिद्ध होता है, तो हमें आबपाशी की किसी भी योजना का निर्माण

करने के पहले इन सब प्रकार के लाभ व नुकसान पर पूरा २ विचार करना चाहिये। इसके अतिरिक्त आबपाशी की एक समस्या यह भी है कि जुदी २ फसलों पर आबपाशी के जुदे २ असर होते हैं। शिवपुर के प्रयोग क्षेत्र मे यह देखा गया है कि जहाँ नहरो का जल आलू व गोभी को फ़ायदा पहुँचाता है, वहाँ वह मटर, चंवला तथा तुवर आदि को फसल को नुक़सान पहुँचाता है। मई व जून मे पैदा होनेवाली फसलों को नहरों की आबपाशी से अधिक फायदा पहुँचता है। इन सब बातों के अन्तगत वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं, जिन पर विचार करने के लिये यहाँ अवसर नहीं है। हम यहाँ इस प्रकार की परिस्थिति में कुछ व्यवहारिक बातें कहते हैं जिनकी ओर हमारे योग्य महानुभाव ध्यान देंगे।

हम पहले कह चुके हैं कि आबपाशी कृषि उन्नति का जीवन है। इसमें तिलमात्र भी संदेह नहीं कि अगर आबपाशी का प्रचार और प्रबन्ध हो जाय तो इस भूमि के देहातो में सोने चाँदी की नदियाँ बहन लगे। पीयत की जमीन (Irrigated land) में जो फसलें पैदा होती हैं, उनका अधिक मूल्य आता है। पीयत का कपास, पीयत की मूँगफली, हलदी, सरसो, अदरक आदि चीजों की कीमत अधिक मिलती है। मानवी स्वास्थ्य के लिय विनाशकारी अफ़ीम की खेती बन्द हो जाने से किसानो का जो आर्थिक नुक़सान पहुँचा है, उसकी क्षतिपूर्ति उपरोक्त चीजो की बोनी से हो सकती है। और भी कई ऐसी चीजें यहाँ पर बोई जा सकती हैं, जिनकी पैदावार केवल पीयत से होती है और

जिनसे किसानों को आशातीत लाभ पहुँच सकता है। हमारा विश्वास है कि अगर हमारे मध्य भारत के देशी राज्य आबपाशी के कामों में काफी धन खर्च कर अपने राज्य में रहे हुए आबपाशी के साधनों का पूरा २ उपयोग करें तो जहाँ किसानों की उन्नति में एक प्रकार का आश्चर्यकारक परिवर्तन होगा, वहाँ राज्यों की आमदनी में भी प्रशंसनीय वृद्धि होगी और इससे राज्यों के पास प्रजा हितकारी अन्य योजनाओं को लेने के लिये साधन उपस्थित हो जायेंगे। अब हम इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि देशी राज्यों में यहाँ की मौजूदा परिस्थिति के अनुसार किस प्रकार आबपाशी का काम शुरू किया जावे। हमारा खयाल है कि सबसे पहले पुराने निवानों की मरम्मत का काम हाथ में लेना चाहिये। देहातों में हमने देखा है कि कई सौ निवान बेमरम्मत पड़े हुए हैं। अगर इन कुओं की मरम्मत की जावे और उनकी खुदाई की जावे तो इसमें खर्चा भी अधिक न होगा और कम खर्च में किसानों और राज्यों दोनों को बहुत बड़ा लाभ पहुँचेगा।

इन विविध प्रकार के निवानों में कुवे सस्ते बन सकते हैं और इसीसे किसान लोग कुवों का बनवाना ज्यादा पसन्द करते हैं। पर साथ ही में यह बात भी है कि जहाँ पानी ज्यादा गहराई पर निकलता है, वहाँ उनके बनवाने में अधिक मूल्य पड़ता है और सिंचाई में मुश्किल होने से परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है। ऐसे स्थानों पर जहाँ कुवों में बहुत गहराई पर पानी निकलता

है, वहाँ नालों या छोटी नदियों में बाँध बाँधकर सिंचाई का प्रबन्ध करने से अधिक लाभ हो सकता है। यह सिंचाई का प्रबन्ध नहरों द्वारा या छोटी ओढियों के द्वारा करना मुफीद है। इस प्रकार 'बाँध' बाँधकर जल सचय करने से या तालाब बनवाने से उसके आसपास के कुवों को भी विशेष लाभ पहुँचता है, क्योंकि उक्त जल सचय से झरनों द्वारा कुवों में पानी जायगा और इससे उनमें भी पानी की इफरात हो जायगी। इस प्रकार के बाँध बाँधने में एक दूसरा फायदा यह भी है कि पशुओं को सुभीते से पानी मिल जायगा और उसके लिये कुवें से पानी निकालने का जो परिश्रम होता है, उसकी बचत होगी। इतना ही नहीं, इसके द्वारा कम वर्षा होनेवाले वर्षा में भी कुछ महीनों तक किसानों को पानी मिलेगा, जिससे उनके कुवों का पानी खर्च न होकर जैसा का तैसा बना रहेगा। और इस प्रकार बाँध का पानी सूख जाने पर किसान अपने कुवों के पानी का उपयोग मक्का की बोनी व कपास के खेत को सींचने में कर सकेंगे। इस प्रकार ये बाँध बड़े उपयोगी होंगे और पानी की कमी के कारण सूखनेवाली फ़सल को जीवन दान देंगे। यदि ये जल्दी सूख भी गये तो इनके सोतों द्वारा जमीन में नमी बनी रहेगी और कुवों व झिरों का पानी कम न होने पायगा। ये बाँध खासकर उस जमीन के लिये उपयोगी होंगे, जिसके अन्दर की तह में काले पत्थर होंगे अथवा जो अधिक गहरी व पीली होगी।

इस प्रकार बाँधों या तालाबों का फायदा न केवल उसी ग्राम

के लोग उठा सकेंगे, जिसमें वे बने हों, वरन् आसपास के गांव के लोगों को भी उनका फायदा मिलेगा और उनके मवेशी उनमें पानी पी सकेंगे। इस प्रकार के जलसंचय से देश की यातायत को भी बहुत लाभ होगा।

आबपाशी से कपास की पैदावार में तिगुना फर्क पड़ जाता है। मालूम जितना कपास पैदा होता है उससे पीयत में तिगुना होता है। कपास के लिये तीन पानी बस हैं। यदि खरीफ का कपास बोने के पहिले भी जमीन में एक दफा सिंचाई कर दी जाय तो बरसात शुरू होने के पहले ही फसल बो दी जासकती है, जिससे वह ठंड व अन्य मौसमी हालतों से होने वाले नुकसान से बचकर खूब बढ़ सके।

इसी प्रकार यदि निवानों का दुरुस्ती कर साँटों की खेती की जान लगे तो शक्कर व गुड़ तैयार हो सकते हैं और इससे किसानों को बहुत मा फायदा हो सकता है। इस प्रकार जिन चीजों के लिये हमारा हजारों रुपया विदेशों को जाता है और जिन चीजों को खरीदने के लिये हम दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है, वे चीजें हम अपने आप तैयार कर सकेंगे।

ट्यूब कुए और सिंचाई

हमने ऊपर यह दिखलाया है कि आबपाशी की क्या उपयोगिता है और वर्तमान परिस्थिति में उसके लिये उपयुक्त साधन किस प्रकार उत्पन्न किये जा सकते हैं। हमने आबपाशी

—ा सिंचाई की व्यवहारिक योजना रखी है। अब हम अपने पाठकों का ध्यान आबपाशी की एक नई रीति की ओर आकर्षित करते हैं। यह रीति न तो निरन्तर बहने वाली नहरों की सी है और न साधारण कुओं की सी। किन्तु यह इन दोनों के बीच की कही जा सकती है। यह रीति ट्यूब* के कुओं की है। इन कुओं में भूमि का पानी छन कर बाहर आता है। इन कुओं से ज़मीन की गहरी सतह का पानी पम्प लगा कर निकाला जाता है। ये पम्प तेल व इञ्जिन द्वारा चलाये जाते हैं। ये कुएं लगभग २५० फीट गहरे होते हैं। इनसे २०० से ४०० एकड़ तक भूमि सींची जा सकती है। इन्हें एक प्रकार की छोटी मोटी नहरें समझ लीजिये। कृषि विद्या-विशारदों का कथन है कि संयुक्त प्रदेश की सी पानी सोखने वाली भूमि में इनसे बहुत अच्छी सिंचाई हो सकती है। दिन रात बहने वाली नहरें ऐसी भूमि के योग्य नहीं होतीं। इसके दो कारण हैं। एक तो इनका पानी भूमि में अधिक समा जाने से मालगुजारी में कमी आ जाती है और दूसरा यह कि आसपास की भूमि में पानी भर जाने से बहुत हानि होती है। ट्यूब के कुए, अगर सफल हो जावें, तो वे अधिक भूमि को जोतने में तो सहायता देते ही हैं, किन्तु इसके साथ ही यह भी सम्भव है कि इनसे सिंचाई के विषय की जाँच करने में अधिक सहायता मिले। इन ट्यूब के कुओं से निम्न लिखित बातों का पता सहज ही में लग सकता है—

* ट्यूब का अर्थ नली होता है—

(१) इन कुओं से कितना पानी निकलता है।

(२) इस पानी के सींचने में कितना खर्च बैठता है।

(३) इनसे कितनी सिंचाई हो सकती है।

(४) इनसे निकला हुआ पानी खेतों तक पहुँचते पहुँचते कितना बर्बाद हो जाता है।

(५) इस पानी से जो फसलें होतीं हैं, वे कैसी होतीं हैं और भूमि धीरे धीरे किस तरह सुधरती है।

इन सब बातों की खोज हो जाने से ट्यूब के कुओं की सिंचाई के लाभ और हानि ज्ञात होने लगेगी। इससे यह भी मालूम हो जायगा कि किस फसल के लिये कितने जल की आवश्यकता है।

देहातों की दशा सुधारने के लिये जिन बड़े बड़े कामों को करने की आवश्यकता है, उनमें से ट्यूब के कुओं का उपयोग भी एक हो सकता है। पर अभी तक विशाल पाये पर इनका उपयोग नहीं किया गया। पंजाब के लिये यह सोचा जा रहा है कि सतलज के पानी से बिजली पैदा करके अमृतसर, लाहौर और देहली में पहुँचाई जावे। जिस प्रकार अमृतसर में ट्यूब के कुए चलाये जाते हैं, उसी तरह सतलज के जल से पैदा की हुई बिजली की सहायता से ट्यूब के कुए चलाये जासकते हैं और उनसे बहुत लाभ हो सकता है। पहाड़ों के पानी में जो शक्ति भरी हुई है और भूमि के अन्दर जो अथाह पानी भरा है, उसको ट्यूब के कुओं द्वारा काम में ला सकते हैं।

ट्यूब के कुओं में अभी तक कुछ न्यूनताएँ हैं। एक तो यह है कि इन कुओं को चलनियों के छिद्र कभी-कभी चूने की कंकरियों से बन्द हो जाते हैं। इनके बन्द होने से बड़ी हानि होती है। कोई ऐसा उपाय ढूढ निकालना चाहिये, जिस से ये छिद्र बन्द न हों। अमेरिका में इन ट्यूब के कुओं की चलनियों को आठवें दसवें वर्ष बदल देने की रीति प्रचलित है।

ट्यूब के कुओं के विषय में डाक्टर डायसन के विचार

बंगाल के स्वास्थ्य विभाग के भूतपूर्व कमिश्नर डॉक्टर डायसन ने इस सम्बन्ध में खोजकर एक नोट लिखा है उस में वे लिखते हैं ❀।

"ट्यूब के कुओं के सम्बन्ध में मेरा अनुकूल मत है। सैय्यदपुर (बङ्गाल) में जाँच पड़ताल कर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि शुद्ध और स्वच्छ जल प्राप्त करने के ये बहुत ही सरल साधन हैं। इतने पर भी मैं इस वक्त इनके सर्वत्र उपयोग (Universal use) की सिफारिश नहीं कर सकता। क्योंकि सब प्रकार की भूमियों में ये सफल नहीं होते। हाँ, जिस भूमि में ये सफल होते हैं, वहाँ तालाब या साधारण कुओं से ये अधिक लाभकारक होते हैं। वहाँ इन से बड़ी किफायत होती है और इनका काम भी बड़ा संतोषदायक होता है। ये सैयदपुर जैसी पोली और रेतीली भूमि

❀ Hand Book of Agriculture by Mukerjee Page 131

के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं। पत्थरीली भूमि या ऐसी भूमि में जिस के नीचे कड़ी चट्टानें हैं ये कामयाब नहीं हो सकते। नदी नालों के रेतीले किनारों पर तथा सूखे हुए तालाबों के मध्य में यह बड़ा अच्छा काम कर सकते हैं और ऐसे स्थानों में यह ऐसे जल-सञ्चय का पता लगा सकते हैं जो अथाह होता है,'

हिन्दुस्थान में कई जगह यह कुवे सफलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं। पाँडिचरी में इस प्रकार के कई कुवे हैं। बड़ौदे में भी इस दिशा में कुछ कार्य हुआ है। अभी दो तीन वर्षों के पहले इन्दौर में भी दो ट्यूब कुओं की योजना हुई थी।

पम्प के द्वारा आबपाशी

पाठक जानते हैं कि कई स्थानों पर पम्पों के द्वारा खेतों की सिंचाई की जाती है। ये पम्प फायर एञ्जिन (अग्नि यन्त्र) द्वारा चलाये जाते हैं और इन से सिंचाई आसानी से हो सकती है। पर ये उन्हीं मनुष्यों के काम के हैं जिनके पास सैंकड़ों एकड़ जमीन है और जो इन्हें खरीदने की ताकत रखते हैं। गरीब किसानों के लिये इनका प्राप्त करना दुर्लभ है। यही यन्त्र आग बुझाने में भी काम आसकता है।

इसके अतिरिक्त पर्शियन व्हील, वाटरलिफ्ट इजिप्शियन व्हील आदि अनेक यन्त्र हैं जिनका विस्तृत विवेचन करने की आवश्यकता नहीं।

सिंचाई की रीति

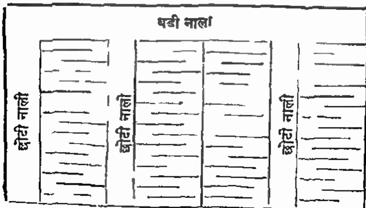
सिंचाई के समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये कि फसल को आवश्यकता से अधिक पानी न दिया जावे। हम देखते हैं कि खेत में बनी हुई पानी की नालियाँ इतनी खराब होती हैं कि खेत में पहुँचते-पहुँचते बहुतसा पानी खराब हो जाता है। इसलिये, अगर सम्भव हो, तो पानी की नालियों को पक्का बना लेना चाहिये। यदि कम खर्च में काम निकालना हो तो चिकनी मिट्टी से नालियाँ बना ली जावें। नालियों को इतनी मजबूत बना लेना चाहिये कि जिससे पानी बहकर बाहर न निकलने पाय। नालियों के दोनों बाजू पर दूब लगा दी जाय तो और भी अच्छा है। नालियाँ ऐसे स्थानों में बनाई जानी चाहिये कि जहाँ से सब खेतों में पानी पहुँचाया जा सके। नालियों का ढाल प्रति सौ फुट की लम्बाई में ६ इन्च से १२ इन्च तक रखा जाय। नालियाँ काफी चौड़ी होनी चाहियें।

सिंचाई की रीतियाँ

भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलों को जुदी-जुदी रीति से पानी दिया जाता है। गमले, वक्स, नरसरी आदि में बोए हुए पौधों को महीन छेद वाले झारे से पानी दिया जाता है। अकसर किसान फसलें क्यारियों में बोते हैं और इन्हीं में सिंचाई के वक्त पानी भर दिया जाता है। पहले लिख आये हैं कि क्यारियाँ

फसल बोने से, निराई, गुडाई में मेहनत, वक्त और पैसा ज्यादा खर्च होता है। इसके अलावा गोभी, करमकल्ला, सेम, आलू आदि कई फसलें ऐसी हैं जो क्यारियों म बोने स उतनी अच्छी नहीं आतीं और इसीलिए इन्हें रागियो (Ridges) पर बोते हैं।

खेत के ढाल के अनुसार लम्बी नालिया बनाई जावे। रोपे नालियों पर लगाए जावें और पानी नालियो मे छोड दिया जाव। इससे लाभ यह होगा कि जडो को तो पानी मिलता रहेगा और पानी से पत्ते खराब नहीं होंगे। दूसर लम्बी नालियों में पानी धीरे धीरे भरता है जिस से मिट्टी खूब पानी सोख लेती है। कभी कभी दो-दो, तीन तीन नालियों म एकदम पानी छोड दिया जाता है। ऐसा करने से नालिया जल्दी पानी स नहीं भर पातीं। इससे मिट्टी ज्यादा पानी सोख सकती है। यह पद्धति तभी काम में लाई जाती है जब कि खेत ज्यादा ढालू न हो।



यदि ढाल ज्यादा हो तो ऊपर लिखी रीति से नालिया बनाई जायें। इस प्रकार की सिंचाई की रीति का अनुकरण करने पर भी ऊपर दिये हुए फायदे होते हैं।

कई फसलों को शुरू में तो ज्यादा पानी लगता है, किन्तु बड़े हो जाने पर कम। ऐसी फ़सलें अधिकतर नालियों में बोई जाती हैं और पौधों के बड़े हो जाने पर नालिया तो भर दी जाती हैं पर रागियों के स्थान में नालिया बना दी जाती हैं। इस रीति का अवलम्बन करने से पौधों को तो पानी मिलता रहता है किन्तु पत्ते तना आदि पानी से दूर रहते हैं, जिस से वे खराब नहीं हो पाते। इसके अलावा जड़ों पर मिट्टी चढाने से कन्द खूब बढ़ते हैं।

अधिक सिंचाई से हानि

अधिक सिंचाई से लाभ के बदले नुक़सान होता है। कई कृषि-विद्या-विशारदों का कथन है कि हिन्दुस्तान में रेहीली या ऊसर भूमि का बनना सिंचाई से बहुत सम्बन्ध रखता है। यदि अधिक पानी सोखने वाली भूमि को छोड़ कर दूसरी प्रकार की भूमि में अधिक सिंचाई का जाय तो उस पर खार की मात्रा अवश्य ही बढ़ जाती है। यह खार अधिक बढ़ जाने पर भूरी या काली पपड़ी के रूप में प्रकट होता है। इसे रेह या कलार कहते हैं। इसी से भूमि में ऊसरपन आता है। सुप्रख्यात् कृषि-विद्या विशारद किंग महाशय अपनी "सिचाई और पानी का निकास"

नामक पुस्तक में लिखते हैं,—"आजकल की निकाली हुई सिंचाई की रीतियों से ही भारतवर्ष, मिश्र और केलीफोर्निया की बहुत सी भूमि ऊसर हो गई है। ये रीतियां उन लोगों की निकाली हुई हैं जो प्राचीन लोगों के सिंचाई करने के उन नियमों से परिचित नहीं हैं, जिन से यहां की भूमि सहस्रों वर्षों से जोती जाने पर भी नहीं बिगड़ने पाई थी। इन देशों की भूमि के रेहीली या ऊसर हो जाने का कारण यही है कि आजकल की सिंचाई की रीतियां यहां की भूमि के लिये अनुकूल नहीं हैं।"

कृषि क्षेत्रों के अनुभवों से यह भी मालूम हुआ है कि आवश्यकता से अधिक सिंचाई से फसल में भी कमी आती है। क्वेटा में इस बात की जांच की गई। वहां गेहूँ बोने से पहले भूमि को एक ही बार पानी दिया गया था। ऐसा करने से पैदावार की औसत प्रति एकड़ १८ मन रही। इसमें फिर यह देखा गया कि बीज बोने के बाद एक ही बार पानी देने वाली उपज से तीन बार पानी देने पर होने वाली उपज में कितना अन्तर पड़ता है तो ज्ञात हुआ कि जितनी बार अधिक सिंचाई की गई उतनी ही बार उपज में २६ प्रति सैकड़ा न्यूनता हुई। इस तरह के और भी उदाहरण हैं। कहने का अर्थ यह है कि जिस स्थान विशेष में जिस फसल को जितनी सिंचाई की आवश्यकता है, वहां उतनी ही सिंचाई करना चाहिये। क्वेटा में एक सिंचाई से काम चल जाता है तो इसका मतलब यह नहीं है कि सब ही जगह एक सिंचाई बस है। भूमि और फसल की परिस्थिति के अनुसार सिंचाई करना चाहिये। ज्यादा या कम नहीं।

फसल का हेर फेर

(फ़सल चक्र)

पाठक जाते हैं कि ज़मीन में निरन्तर एक ही फ़सल बोते रहने से उपज अच्छी नहीं होती। इस का कारण यह है कि एक ही भूमि में लगातार एक ही फ़सल बोते रहने से उसमें रही हुई विशेष प्रकार की खुराक कम हो जाती है। जैसे कपास की फसल भूमि में नाइट्रोजन लेकर फलती-फूलती है। भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा नियमित रहती है। ऐसी हालत में एक ही भूमि में निरन्तर कपास बोते रहने का यह नतीजा होगा कि उसमें नाइट्रोजन की कमी आजायगी। इससे कपास की पैदावार कुदरती तौर से कम हो जायगी। यही बात दूसरी फ़सलों के लिये भी है। अतएव भूमि में पौधों के भोजन की कमी न हो, इसलिये फसलें हरफेर कर बोई जाती हैं।

फ़सल को हेरफेर कर बोने से खेत में रहे हुए फ़सल के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। पहली फ़सल के जो कीटाणु खेत में रह जाते हैं वही फ़सल फिर बोने से उन्हें अपनी खुराक मिल जाती है। इससे वे खूब बढ़ जाते हैं तथा फसल को नष्ट कर देते हैं। अगर उसी खेत में दूसरी फसल बोई गई तो उन कीड़ों को खुराक न मिलने से वे अपने आप मर जावेंगे।

इस लिये हेरफेर कर फसल बोते समय इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिये कि एक के बाद दूसरी ऐस फसल बोना चाहिये जिन पर गुजर बसर करने वाले कीड़े जुदे जुदे हों। जैसे गेहूँ की फसल पर गेरुआ रोग लगता है। तो गेहूँ के बाद ऐसी फसल बोना उचित होगा जिस पर गेरुआ रोग न लगता हो। इसका परिणाम यह होगा कि गेहूँ की फसल कट जाने के बाद भी गेरुए के जो कीटाणु भूमि में होंगें वे अपने आप मर मिटेंगे अतएव उस खेत मे गेहूँ के बाद ऐसी फसल बोना चाहिये जिसमें गेरुए के जावाणु अपना भोजन नहीं पा सकें।

हेरफेर कर फसले बोने से जमीन को आराम मिलता है। उसका जीवनी-शक्ति मन्द होने के बजाय तेज होती है। यही कारण है कि जिस जमीन मे हेरफेर कर फसले बोई जाती हैं उसकी उपज शक्ति ज्यादा टिकती है और उसम फसलों को रोग कम लगते हैं।

हेरफेर कर फसले बोते समय नीचे लिखी हुई बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(१) इस प्रकार के क्रम से फसलें बोई जावें जिससे जमीन की उपजाऊ शक्ति कम न हो। इसके लिये खुराक लेने वाली फसल के बाद खुराक जमा करने वाली फसल बोना चाहिये।

(२) गहरी जड़ें फैलानेवाली फसलों के बाद कम जड़े फैलाने वाली फसल बोना चाहिये।

(३) हेरफेर कर फसलें बोने के क्रम में एक चारे की फसल भी अवश्य होना चाहिये।

(४) बाजार की माग के अनुसार फसलें बोना चाहिये।

(५) जमीन के गुण धर्म को देख कर हेर फेर कर बोई जाने वाली फसलों का निश्चय करना चाहिये।

(६) फसल चक्र का निश्चय करते समय खाद व आबपाशी के इन्तजाम की ओर पूरा ध्यान देना चाहिये।

फसल के हेर फेर से होने वाले फायदे

(१) जमीन को जुदी-जुदा प्रकार की जुताई मिलती है।

(२) किसी एक ही प्रकार की खुराक का खजाना खाली नहीं होता।

(३) फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े और खरपतवार की वृद्धि में रुकावट होती है।

(४) बाजार के रुख के मुआफिक जुदी-जुदी जाति की फसलें पैदा की जा सकती हैं।

(५) कम खर्च से ज्यादा आमदनी होती है।

(६) एक फसल की जुताई व काश्त की मेहनत दूसरी फसल के काम आ जाती है। जैसे आलू के बाद गन्ना बो देने से आलू की खुदाई गन्ने के काम में आ जाती है।

(७) भिन्न भिन्न प्रकार का अनाज किसानों के पास आ जाता है।

इस प्रकार हेर फेर कर फसल बोने से और भी कई तरह के लाभ हैं।

बचाने के कुछ प्रयोग किये। उन्होंने हमारे द्वारा संपादित 'किसान' में इन प्रयोगों के आधार पर एक मननीय लेख लिखा है। इसको हम यहां अत्यन्त लाभकारक समझ कर उद्धृत करते हैं। यह लेख ईसवी सन् १९२९ के मई मास के "किसान" में प्रकाशित हुआ है।

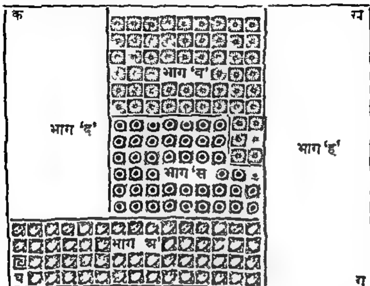
पाले से किसानों को कितना नुकसान होता है, इससे उनकी फ़सल को कैसी बरबादी होती है, इसका वर्णन यहां करने की आवश्यकता नहीं। किसान जानते हैं और खूब अच्छी तरह समझते हैं कि इस भयङ्कर बला के आगे किसी का वश नहीं। उदाहरण के लिये इसी वर्ष शुरू माघ में कई स्थानों में पाला पड़ा, उससे किसान बरबाद होगये। जयपुर राज्य के अन्तर्गत बसी नामक स्थान में एक खेत के अलग २ टुकड़ों पर इस पाले का किस प्रकार असर पड़ा और उससे फ़सल की क्या हालत हुई उसका संक्षिप्त वर्णन यहां देते हैं। इससे किसानों को पता लगेगा कि पाले से किस प्रकार उनके फ़सल की रक्षा की जा सकती है। हम इस खेत का खाका इस लेख के अन्त में दे रहे हैं। इससे खेत की हालत किसानों के ध्यान में सहज ही आ सकेगी।

क, ख, ग, घ, एक गेहूँ का खेत है। इसके 'ब' के भाग में दोज की सिंचाई की गई। 'स' भाग में तीन को, 'अ' भाग में चौथ को और 'द' और 'ह' भाग बिना सिंचाई के रखे गये। पंचमी को पाला पड़ा जिससे क़रीब १५ दिन बाद जब खेत को देखा तब मालूम हुआ कि पाले से 'अ' भाग में, जिसमें कि एक ही

दिन पहले सिंचाई हुई थी, बहुत ही कम नुकसान हुआ। 'स' और 'व' भाग में जहाँ दोज व तीज को अर्थात् पाला पड़ने के दो और तीन दिन पहले सिंचाई हुई थी, बारह चौदह आना नुकसान हुआ और 'द' और 'ह' भाग मे जहाँ सिंचाई बिल्कुल नहीं हुई थी, फसल बिलकुल बरबाद हो गई।

ऊपर बतलाये हुए उदाहरण से किसानों के ध्यान मे यह बात पूरी तौर से आ जायगी कि वही सिंचाई फायदेमन्द होती है और उनके फसल की रक्षा कर सकती है, जहाँ कि वह पाला गिरने के पहले ही दिन की गई हो। सुना जाता है कि यू० पी० के किसान पाला गिरते समय खेतों में पानी देने का काम दिन रात चालू रखते हैं और यही कारण है कि उनका बहुत कम नुकसान होता है। लेकिन अफसोस है कि राजपूताना व मध्य-भारत के किसान पाला पड़ते समय अपना और अपने जानवरों का बचाव करने के लिये सिंचाई का काम बन्द कर घर में बैठ जाते हैं और बहुत ज्यादा नुकसान उठाते हैं। अतएव उनको चाहिये कि पाला गिरने के समय सब काम छोड़ कर खेतों में लगातार दिन व रात सिंचाइ जारी रक्खें। उन्हें यह खूब अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये कि सिंचाई ही एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा पाले मे फसल बचाई जा सकती है।

जयपुर राज्य मे बसी गॉव के एक खेत का खाका।



कुआ O — यह भाग जहाँ पानी नही दिया गया।

यह भाग जहाँ पानी पाला गिरने के तीन दिन पहले दिया गया।

यह भाग जहाँ पानी पाला गिरने के दो दिन पहले दिया गया।

यह भाग जहाँ पानी पाला गिरने के एक दिन पहले दिया गया।

ऊसर भूमि का सुधार।

ऊसर भूमि का दूसरा नाम रेहिलो भूमि भी है। हिन्दुस्थान के आगरा, अवध, पंजाब, सिन्ध और पश्चिमोत्तर प्रदेश में ऊसर भूमि का मिलना एक बहुत ही साधारण बात है। मुख्यत उत्तरीय भारत की उपजाऊ और घनी आबादी के बीच में ऐसी भूमि के बड़ बड़े भाग अधिकता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण में नीरा नदी की नहर के आस पास और बम्बई प्रान्त के खेडा ज़िले में भी ऐसी भूमि के बड़े बड़े भाग बहुत से मिलते हैं। इस प्रकार की निकम्मी भूमि से देश की जो आर्थिक हानि होरही है उस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। कृषि विद्या-विशारदों का ध्यान इस प्रकार की भूमियों को सुधारने की ओर जा रहा है और उन्हें इसमें सफलता भी होरही है।

अलीगढ़ में इस प्रकार की भूमि को सुधारने के प्रयत्न किये गये। वहाँ गोबर या दूसरे प्रकार के सेन्द्रिय खाद बहुत मिल सकते हैं। कृषि विद्या विशारदों ने ऊसर भूमियों में इन खादों का उपयोग किया जिससे वे जोतने के योग्य बन गईं। जिप्सम के खाद को काम में लाने से भी बहुत कुछ लाभ हुआ है। कहीं कहीं ऐसी भूमि में रेत मिलाने से भी वह खेती के काम के लायक होगई है। पश्चिमोत्तर प्रदेश में लूसर्न की फसल उगा देने से भी

ऊसर भूमि में उपजाऊपन आगया है। इसके अतिरिक्त खेत में धवूल उगा देने से भी ऊसर भूमि मे सुधार होता है। इसका कारण यह है कि इन फसलों को उगा देने से भूमि की बनावट सुधर जाती है और वह हवादार भी हो जाती है। इस प्रकार की सुधारी हुई भूमि तब तक अच्छी बनी रहती है जब तक कि वह खार खार की सिंचाई से खराब न करदी जाय। अमेरिका के युक्त प्रदेश के खेतों में नालियाँ बनाकर ठीक तरह पानी का निकास कर ऊसर भूमि को सुधारते हैं। परन्तु दुआब की भूमि में इस उपाय से कुछ भी लाभ नहीं हुआ।

यू० पा० के प्रतापगढ नामक स्थान में वहाँ के कृषि विभाग ने ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने के अनेक प्रयोग किये। उक्त विभाग द्वारा प्रकाशित सहयोगी 'किसानोपकारक' ने उन्हीं प्रयोगों के आधार पर ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने की जो रीतियाँ प्रकाशित की हैं उन्हें हम नीचे उद्धृत करते हैं।

(१) जो भूमि ऊसर हो उसमें बरसात के दिनों में खूब गहरी जुताई करनी चाहिए और उसके बरसाती पानी को बहा देने के लिये रास्ता बना देना चाहिए ताकि उस पानी के साथ हानिकारक नमक, जिसके कारण भूमि ऊसर होगई है, बह जाने।

(२) ऊसर भूमि में ऐसी फसलों को बोना चाहिए कि जिनकी जड़ें अधिक गहराई तक जाती हों और जो नमक चूस लेती हों। ऐसी फसलें अरहर, ढेंचा, जावा की नील, मदार (आक) और रेंडी आदि हैं।

(३) मेड़ बना कर ऊसर भूमि में पानी जमा कर लिया जावे और उस में धान की खेती की जावे और धान कट जाने के पश्चात् उसमें चने या देशी मटर की काश्त की जावे।

(४) ऊसर भूमि की ऊपरी सतह में ठीकरे मिला दिये जावें। ताकि अधिक हवा भूमि में प्रवेश कर सके। तत्पश्चात् उसमें जावा की नील बो दी जावे। यह रीति मि० ए० होवर्ड साहब सी० आई० ई० की अनुमति से ग्रहण की गई है। उपरोक्त भिन्न भिन्न प्रकार की रीतियों के प्रयोग से जो फल प्राप्त हुए हैं, वे आशाजनक हैं।

प्रयाग के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र सहयोगी 'अभ्युदय' में "ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने का रीति" नामक एक छोटा सा लेख प्रकाशित हुआ है। उसे उपयोगी समझ कर हम यहा उद्धृत करते हैं।

(१) जिस समय भूमि जुताई योग्य हो उस वक्त उसे जोत कर अरहर आदि ऐसी फसलें, जिनकी खुराके नमक हों, बो देना चाहिये। (२) जब वर्षा शुरू हो तब ऊसर भूमि को छोटे छोटे भागों मे बाट कर चारा तरफ पुश्तेबन्दी कर देना चाहिये। पाना भर आन पर आदमियों और मवेशियों से उस खूब गन्दला करवा कर एक तरफ को राह बना कर उसे बहा देना चाहिये और बाद में फलीदार फसल बोना चाहिये। इसकी फली तोड़ लेनी चाहिय और शेष भाग को खेत ही में लोहे के हलों से जोत देना चाहिये। (३) खुश्की के समय म इसके

ऊपर जो रेह होती है उसे खुरच लेते हैं और फिर रेह से सज्जी बनाते हैं। (४) केलेशियम सलफेट के डालने से भी इसकी दुरुस्ती हो जाती है। (५) जमीन में कुछ गहराई पर ककर मिला देते हैं और बाद को उसमें जावा की नील या अरण्डी आदि की कास्त करते हैं। इस प्रकार कास्त करने से कुछ ही समय में भूमि ठीक हो जाती है। (६) भूमि का निकास अच्छा बनाना चाहिये। (७) इस भूमि में बबूल के पेड़ बो कर भी लाभ उठा सकते हैं। (८) ऊपर भूमि को वर्षा के समय में गहरी जुताई करके छोड़ देना चाहिये और चारों तरफ से पानी रोके रहना चाहिये। बाद को पानी एक तरफ निकाल कर धान बो देना चाहिये।

फ़सल को नुकसान से बचाने के उपाय।

अकसर देखा जाता है कि जब फ़सल बिगड़ती है या पैदावार कम होती है तो उसके तीन मुख्य कारण होते हैं—

(१) पानी की कमी या बिलकुल वर्षा न होना।

(२) बहुत पानी बरसना व उससे फसल को नुक़सान पहुँचना।

(३) किसी ऐसे रोग का लग जाना, जिससे या तो पैदावार कम हो या वह बिलकुल बिगड़ जाय।

अब तक हम विज्ञान में इतनी अधिक उन्नति नहीं कर पाये हैं कि जिससे हम बरसात पर अपना अधिकार कर सकें अर्थात् जिस समय जहाँ जितनी जरूरत हो वहीं उतना ही पानी बरसा सकें। यह सम्भव है कि किसी दिन हम वर्षा को भी अपने वश मे करलें, परन्तु जब तक हम ऐसा नहीं कर सकते तबतक तो हमें कम से कम दूसरी बातों के ज़रिये ही अपनी फ़सल का बचाव करना होगा।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, हमारे सामने खेती की तरक्की के लिये दो मुख्य बातें पैदा होती हैं, जिनको सुलझाना हमारे लिये अति आवश्यक होजाता है। एक वर्षा की कमी व ज्यादती से फसल को बिगड़ने न देना व दूसरी फ़सल को कीड़ों व दूसरे रोगों से बचाना। यह सब कोई जानते हैं कि फ़सल तैयार करने के लिये नमी या सील सब से ज्यादा काम की चीज़ है। यदि ज़मीन व वायुमंडल में सील न हुई तो कुछ भी पैदावार नहीं हो सकती। वैसे तो फ़सल की पैदावार में प्रकाश, हवा आदि की भी ज़रूरत होती है। पर आजतक के अनुभवों से पता लगता है कि अक्सर इनमें ऐसा हेर फेर नहीं होता, जिससे कि फ़सल बिलकुल नष्ट हो जावे। अतएव केवल बरसात की कमी व ज्यादती का सवाल फ़सल की पैदावार के लिये बड़ा महत्व रखता है। साल के शुरू मे अथवा फ़सल बोते समय बरसात का अन्दाज़ा नहीं लगाया जासकता। किसानों को अच्छी बरसात

की उम्मीद पर अपनी जमीन में बीज बोदेना पड़ता है। इसी प्रकार किसान पहले से यह भी अन्दाज नहीं लगा सकते कि कितने कितने समय से कितनी वर्षा होगी। अतएव उन्हें इस प्रकार के उपाय काम में लाने की आवश्यकता है, जिससे बरसात कम या ज्यादा होने पर उन्हें नुकसान न उठाना पड़े और यदि दुर्भाग्यवश उन्हें कुछ नुकसान उठाना ही पड़ा तो वह इतना ज्यादा न हो, जिससे कि वे बर्बाद होजावें। ये उपाय तीन हैं —

(१) कम बरसात में अपनी फसल को नुकसान से बचाना।

(२) अगर बरसात अधिक हुई तो उसके लिये व्यवस्था कर रखना।

ऊपर बतलाई हुई बातों के लिये तीन तरह से जमीन की तैयारी करने की आवश्यकता है। इसके लिये जमीन को तीन हिस्सों में विभक्त कर देना चाहिये। पहले हिस्से में इस प्रकार की व्यवस्था करना चाहिये, जिससे ज्यादा आल जमीन में टिक सके। इसके लिये जमीन को गर्मी में जोत कर मिट्टी खुली कर देना चाहिये, जिससे कि बरसात शुरू होने के समय जमीन का मुँह खुला हो जाय और जितना भी पानी गिरे सब जमीन में समा जाय। अगर गर्मी के दिनों में जमीन जोत कर तैयार न की गई तो बहुत सा पानी फिजूल निकल जायगा। अगर किसी तरह यही पानी जमीन सोख सके तो आगे चलकर पानी की खींच पड़ने पर फसल को बढ़ने के लिये काफी आल मिल सकेगी। अतएव जब एक मड़ी बन्द हो जावे, तब फिर खेत को जोत कर जमीन

को उथल पुथल कर देना चाहिये जिससे कि पानी भाप बनकर उड़ने न पावे। अकसर किसान अपनी जमीन को बरसात शुरू होने के बाद जोतना शुरू करते हैं, जिससे पहली वर्षा का बहुतसा पानी बह जाता है। आबपाशी के बिना गेहूँ या रबी की फसलें लेने की जो प्रथा कई प्रान्तों में जारी है, उससे साफ मालूम होता है कि हमारे किसान 'आल' के महत्व को खूब समझते हैं। पर वे लकीर के फकीर बने रहना पसन्द करते हैं और इसी कारण जो कुछ उनके बापदादों के वक्त से होता आया है, उसी के मुताबिक काम करते हैं। यदि वे अपने खेत में पहले ही से ज्यादा से ज्यादा आल इकट्ठा करने की व्यवस्था कर रखें तो उन्हें कम वर्षा में भी बर्बाद होने का मौका न आयगा।

बहुत अधिक बरसात में फसल की रक्षा करने के लिये जमीन के दूसरे हिस्से में नालियों के जरिये फालतू पानी निकालने का इन्तजाम करना चाहिये।

इससे खूब बरसात होने पर भी फसल गल न सकेगी। अगर इस अवधि में बरसात कम हुई तो नालियों को बन्द करके पानी रोक देना चाहिये, जिससे फसल में आल बनी रहे। इस उपाय को काम में लाने से ज्यादा व कम बारिश होने की हालत में किसानों को अपनी फसल बिगड़ जाने या सूख जाने का डर न रहेगा।

किसानों को चाहिये कि ऊपर बतलाये हुये तरीकों से खेत तैयार कर उन में फसल बो दें। उन्हें बरसात कम व ज्यादा होने के अंदाज में न पड़ना चाहिये। जब जैसी हालत उनके सामने

हों, उस मुताबिक उन्हें अपनी फसल के बचाव का उपाय करना चाहिये।

अब रहा कीड़ों या दूसरी बीमारियों से फसल की रक्षा करने का सवाल। इसके लिये हमेशा चुनी हुई जाति के बीज बोना चाहिये। जिससे कीड़े व दूसरे रोग फसल को सताने न पावें। इसी तरह गर्मी के मोसिम में खेत की अच्छी तरह जुताई कर डालना चाहिये। इतने पर भी यदि खेत में कीड़ों का दौरा हो जाने अथवा कोई रोग फसल को लग जाने तो उसके लिये खास तरकीबें काम में लाना चाहिये। ये तरकीबें आगे दी जावेंगी।

काँस को जड़ से नष्ट करने की तरकीब

भारतवर्ष के कुछ हिस्सों में कपास व दूसरी फसल की बढ़ती का रोकने वाला काँस नामक एक घास है। यह बड़ी गहरी जड़वाला होता है और ऊपर २ से काट डालने पर भी हर साल बढ़ता रहता है। जिस खेत में यह दुखदायी घास होता है, उस खेत की कपास की फसल लगभग एक तृतीयांश कम होजाती है। हिन्दुस्थान के किसानों के पास जितने खेती के औजार हैं व सब काँस को जड़से नहीं निकाल सकते। अलबत्ता वे इसकी बढ़ती को रोक सकते हैं। इसलिये काँस का रोग जड़से खो देने के लिये कई जगह 'ट्रक्टर्स' काम में लाये जाते हैं। मगर इसमें खर्च बहुत पड़ता है। इससे मामूली किसान इन से फ़ायदा

नहीं उठा सकते। इसलिये मध्य भारत के सुप्रसिद्ध खेती के विशेषज्ञ मि० हॉवर्ड ने कास को जड़ से उखाड़ने की एक आसान तरकीब निकाली है। जब हावर्ड महोदय ने पहले पहल इन्दौर में खेती के प्रयोग शुरू किये तो आपको ऐसी जमीन मिली, जिसमें लगभग आधे से ऊपर रकबे में कास खड़ा था। इससे आपको कांस उखाड़ने की तरकीब सोचनी पड़ी। उस समय प्रयोग शाला में इतने पैसे न थे कि मामूली तरीक़ पर हाथ से सारी जमीन का कास खुदाया जा सके। ऐसा करने से प्रति एकड़ ८० रुपये खर्च बैठने का अन्दाज था। अतएव इसके लिये और सरल तरकीब ढूंढ़ी गई। पहले पहल अंग्रेजी ढग के हल [रैन सम्स स्टील वार प्लौ सी० टी० प्लौ, साइल इन्व्हर्टिंग प्लौ आदि] इस्तेमाल किय गय। ये हल दो बैलों की दो जोड़ियों से खींचे जाने वाले थे। परन्तु य भी सन्तोषप्रदायक काम न दे सके। इनसे काम भी बहुत थोड़ा हुआ। इन हलों के नाकामयाब होने के दो कारण थे। एक तो इनमें दो बैल की दो जोडिया लगती थी, जिससे चारों बैलों की बराबर ताक़त नहीं लग सकती थी। इसके सिवा दूसरे गहरा काम निकालने में बहुत ज्यादा ताकत की जरूरत थी। इन सब बातों से मालूम हुआ कि काँस को नाश करने के लिये पश्चिमी देशों में जिन तरीकों की जरूरत होती है वे तरीक़ यहाँ ज्यादा काम नहीं दे सकते।

इसके बाद 'बखर' का उपयोग किया जाने लगा। इसमें चारा बैल एक ही कतार में जोते जाते हैं और यह ८,९ इंच की गहराई

तक जमीन में घुस जाता है। यह बखर पी एल ओ नाम के दम इञ्ची हल में कुछ फेर बदल करके बनाया गया है। इसके द्वारा कांस की तमाम जड़ें निकल आती हैं। इस बखर के आगे एक छोटा सा पहिया लगा रहता है जैसा कि आगे दिये हुए चित्र में मालूम होगा। इस बखर में एक जंजीर के द्वारा चार बैलों की एक जूडी बांधी जाती है। इस जूडी के लगने में चारों बैलों की ताकत बराबर २ लगती है। इसमें एक एकड का कांस एक दिन में निकल जाता है।

ऊपर बतलाये हुए सब अनुभवों से हॉवर्ड महोदय ने यह नतीजा निकाला है कि हिन्दुस्थान की गहरी काली जमीन तथा दूसरी तरह की जमीनों का कांस निकालने के लिये यह बखर बड़ा उपयोगी है। यह केवल ४० ५० रुपयों में मिल सकता है। मामूली हैसियत का किसान भी इसे खरीद सकता है। इससे ट्रैक्टर या भाफ से चलने वाले सब हलों के काम सहज में निकल सकते हैं।

इस बखर की लगभग १०० जाड़ियें इन्दौर के प्लैंट रिसर्च इन्स्टिट्यूट में हैं। इस स्थान का सहायता देने वाली रियासतों के काश्तकारों के लिये इस बखर की कीमत लगभग ५० रुपया रखी गई है।

खरपतवार

"कांस" का जिक्र हम पहले कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के बिना बोये हुए पौधे खेत में उग आते

हैं जो फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। इन्हें खरपतवार कहते हैं। जङ्गली भींडी, सावरी, मोथा, बावची, अगिया घास, दूब आदि पौधों का शुमार खरपतवार में किया जाता है।

सभी प्रकार के खरपतवार खेत की जगह घेर लेते हैं, जिससे फसल के पौधों की बाढ रुक जाती है और बहुत से पौधे मर भी जाते हैं। परिणाम यह होता है कि पैदावार कम होती है। खर पतवार फसल को ढक लेते हैं, जिससे उसे काफी हवा और प्रकाश नहीं मिलता है। इसके अलावा ये जमीन में से खुराक सोखते हैं, जिस से फसल को काफी खुराक नहीं मिल पाती। परिणाम यह होता है कि फसल पीली पड जाती है। इनके कारण फसल के पौधों पर शाखाएं भी कम निकलती हैं। कुछ खर पतवार ऐसे भी हैं, जो फसल के पौधों पर लिपट जाते हैं। इससे भी फसल की बाढ में रुकावट पहुँचती है।

खर पतवार की कुछ जातियां ऐसी भी हैं, जो अपना भोजन जमीन से न लेकर दूसरे पौधों की देह में से ग्रहण करती हैं। कुछ पौधे आधा भोजन जमीन में से ग्रहण करते हैं और कुछ दूसरे पौधे की देह में से। 'अगिया' घास इसका उत्तम उदाहरण है। ऐसे खर-पतवार परोपजीवी कहे जाते हैं। कुछ पौधों के बीज ज़हरीले होते हैं।

खरपतवार को खेत में या खेत के आस पास बढ़ने देना अत्यन्त हानिकर है। फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े इन

पर जीते हैं तथा वे फसल पर हमला करते हैं। इससे फसल को बहुत नुकसान पहुंचता है।

खरपतवार के जीवन पर विचार करना भी जरूरी है। अवस्था के मान से खरपतवार दो प्रकार के होते हैं। १—वर्षायु और २ बहुवर्षायु।

वर्षायु खरपतवार की जिन्दगी एक वर्ष से अधिक नहीं होती। कुछ पौधे तो पांच छः महीने से ज्यादा जी नहीं सकते। बीज पकते ही पौधा सूख कर मर जाता है। इनकी जड़ें जमीन में गहरी नहीं पैठतीं। बहुवर्षायु खरपतवार बरसों तक जीवित रहते हैं और अपनी जिन्दगी में कई बार फूलते फलते हैं। खेती और बगीचों में बहुवर्षायु खरपतवार ही ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं और इन की वृद्धि रोकने के लिये ज्यादा मेहनत और पैसा खर्च करना पड़ता है।

खरपतवार कई प्रकार के होते हैं। जङ्गली भिंडी आदि कुछ पौधे सीधे बढ़ते हैं। दूब आदि जमीन पर फैलते हैं। चांदबेल आदि सहारे से ऊपर चढ़ते हैं। नागरमोथा आदि कुछ के तने भूमि के अन्दर रहते हैं, जिनसे नवीन पौधे पैदा होते रहते हैं। कांस के मौसिक तने से भी नये पौधे जन्म लेते हैं। कुछ खरपतवार ऐसे भी हैं, जो उखाड़ कर खेत में पटक देने से झट जड़ पकड़ लेते हैं। खरपतवार कैसे फैलते हैं। १ अधिकांश वर्षायु खरपतवार के पौधे बीज से ही पैदा होते हैं। इनके बीज कई तरह से फैलते हैं। पकने पर पौधों के बीज उड़कर जमीन में फैल

जाते हैं। बहुत से खर-पतवार के बीज फ़सल के बीज के साथ खेतों में पढ़ जाते हैं। सींगनी के खाद या पशु पक्षियों के विष्ठा के साथ ये खेतों में फैल जाते हैं। गोबर और कचरे के खाद के कारण भी खेतों में बहुत से खर पतवार उग आते हैं।

बहु वर्षायु खर-पतवार भौमिक तनों के टुकड़ों से फैलते हैं कुछ बहु-वर्षायु खर पतवार कन्द मूल आदि द्वारा भी फैलते हैं।

खेतों में वर्षायु खर-पतवार घास पात आदि उग आते हैं। इन्हें फूल आने के पहले ही उखाड़ कर फेंक देना चाहिये। यदि खेत में फ़सल नहीं बोई गई हो तो पानी बरसने के बाद ही खर पतवार के उगने पर बखर या हैरो या हल चलाकर खेत को जोत देना चाहिये। ऐसा करने से कम मेहनत और थोड़े खर्च में खेत साफ़ किए जा सकते हैं। फ़सल बोने के बाद में खेतों में खर-पतवार घास पात उग आवें तो पहले डौरा कुलिया आदि चलाकर दो कतारों के बीच का घास पात नष्ट किया जा सकता है। फ़सल की कतार में उगे हुए खर-पतवार को हाथ से उखाड़ डालना चाहिये। फूल आने के पहले ही इनको उखाड़ डालना चाहिये। साफ़ बीज ही खेतों में बोया जाना चाहिये और इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये कि खाद के ढेर पर सत्यानाशी, औंधी झाड़ा आदि पौधों के पके हुए बीजवाले पौधे न डाले जावें। यदि खर-पतवार के बीज खाद के ढेर पर भूल से फेंक दिए जायँ, तो उन्हें उगने के बाद फूल आने के पहले ही उखाड़ डालना चाहिये।

पौधों की बीमारियाँ और उन्हें रोकने के उपाय

मनुष्यों की तरह पौधों को भी अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। जिस प्रकार मनुष्यों की अधिकांश बीमारियों के कारण सूक्ष्म जीवाणु हैं, उसी प्रकार पौधों की बीमारियों के कारण भी सूक्ष्म जीवाणु या विविध प्रकार की इल्लियाँ हैं। पाठक जानते हैं कि जब प्लेग हैजा आदि बीमारियों का प्रकोप होता है तो लाखों मनुष्य इनकी भेंट चढ़ जाते हैं। इसी तरह फसलों पर भी जब भीषण रोगों का आक्रमण होता है तो वे चौपट होजाती हैं। करोड़ों रुपयों का नुकसान होजाता है। किसानों में हाहाकार मच जाता है!! विज्ञानविद् सज्जन मानव रोगों की तरह फसलों के रोगों का भी अनुसन्धान कर रहे हैं। हर्ष की बात है कि पिछले कुछ वर्षों में भारतवर्ष में भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुसन्धान हुए हैं। इस विषय पर अंग्रेजी भाषा में, बहुत सा साहित्य भी, प्रकाशित हुआ है। पौधों में रहने वाले हानिकारक कीटाणुओं के जीवन की जाँचें कीगई हैं। उनसे होनेवाली हानि पर भी प्रकाश डाला गया है। रोग कीटाणुओं को नष्ट करने के उपाय भी निकाले गये हैं। इसके अतिरिक्त बीमारियों को रोकने के उपायों में भी बहुत

कुछ उन्नति हुई है। इतना ही नहीं वे उपाय काम में भी लाये जाने लगे हैं। फसलों के रोग दो तरह से दूर किये जासकते हैं।

(१) ऐसी औषधियों या औषधियों के मिश्रण को काम में लाना जिन्हें कीडे या फफूँद (फंगस) लगे हुए स्थान पर छिड़कने से कीडे नष्ट होजावें और फफूद दूर होजाय।

(२) "बीमारी की चिकित्सा" के बजाय उसे होने ही न देने की पद्धति को काम में लाना।

जब कि फसलों पर लगने वाले इन विविध जन्तुओं की जीवन लीला की सब बात मालूम हो जाती हैं, तब इन्हें मिटा देने का प्रश्न विशेष कठिनाई उपस्थित नहीं करता। देखा गया है कि इनके जीवन में एक ऐसा विशेष अवसर आता है कि जब इन्हें नष्ट करने के प्रयोग विशेष सफल हो सकते हैं। उदाहरण के लिये ताम्बा मिश्रित गन्धक की बुकनी याने कॉपर सल्फेट को छिड़क कर पौधे पर लगे हुए कीड़े तथा फफूद नष्ट किये जा सकते हैं। इसी प्रकार बीज को बोने के पहले उसे तूतिया के पानी में भिगो देने से छोटे पौधे अनेक रोगों से बचाये जा सकते हैं। पौधों पर लगनेवाली हरे रंग की इल्लिया साबू आदि के पानी तथा मिट्टी के तेल से नष्ट की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त कीडे और फफूँद को (फंगस), उनके आराम करने की हालत में, इकट्ठा कर खेत से बहुत दूर कड़ी धूप में छोड देने से भी काम निकल सकता है।

पर क्या ये उपाय भारतवर्ष के गरीब किसानों के व्यवहार

में आने योग्य हैं ? इन्हें काम में लाने में जो खर्च होगा क्या वह फ़सल की रक्षा से होने वाले लाभ से कहीं अधिक नहीं बढ़ जायगा ? इन उपायों को काम मे लाना क्या भारतवर्ष के दरिद्री और अपढ किसानों के बूते के बाहर नहीं है ? किसानों की बात अलग रहने दीजिये। जमींदार या अन्य बड़े आदमियों को लेली जिये। वे भी तो आर्थिक लाभ ही के लिये खेती करेंगे। उन्हें उन दवाओं से क्या फायदा होगा जो फसल से भी महगी पड़े। हाँ, चाय, काफ़ी, रबड़, और फलों के समान कुछ ऐसी मूल्यवान फ़सलें हैं कि जिनकी चिकित्सा का खर्च इन्हीं के लाभ से पूरा हो सकता है।

पर अधिकाश फसलों के लिये आर्थिक दृष्टि से उपरोक्त उपायों का व्यवहार लाभप्रद नहीं है। तो भी हमने हर एक जाति क फसल की खेती के साथ साथ उसके रोगों की औषधियों का भी उल्लेख किया है। इसमें हमारा उद्देश्य यह है कि हमारे पाठक इस सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करें और जहाँ सम्भव हो वहाँ इनका उपयोग भी करें।

अब हम दूसरे उपाय की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते है। वह है पौधों को बीमारी न होने देना। अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि "बीमारी के इलाज के बजाय उसकी रोक कहीं ज्यादा अच्छी है।" यह कहावत मनुष्यों की तरह पौधों पर भी घट सकती है और अच्छी तरह घट सकती है। जिन सज्जनों ने वैद्यक विज्ञान (medical science)

का थोड़ा बहुत भी अध्ययन किया है, व जानते हैं कि मनुष्यों के अन्दर रोग प्रतिकारक शक्ति (Power of resistance) रही हुई है। यह शक्ति किसी मनुष्य में कम होती है और किसी में ज्यादा। खास उपायों के द्वारा यह शक्ति बढ़ाई भी जा सकती है। ठीक यही बात पौधों के लिये भी लागू है। किसी जाति की फसल में यह शक्ति ज्यादा होती है और किसी में कम। इसलिये बोने के लिये किसी भी अनाज की ऐसी जाति को चुनना चाहिये, जिस में रोग निवारक शक्ति अधिक हो। इससे फसल की बीमारियों या आपत्तियों से अपने आप रक्षा हो जायगी। कभी-कभी दो जातियों के पौधों के संयोग (Hybridization) से इस प्रकार की किस्म पैदा भी की जा जाती है। पूसा गेहूँ नम्बर ४ इसी प्रकार की दोगली जाति है। इसमें गेरुआ आदि रोग नहीं लगते। फसलों को बीमारियों से बचाने का दूसरा तरीका यह है कि कृषि की पद्धतियों में उन्नति करना। ऐसा करने से पौधों की शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि वे बीमारियों को दबा सकेंगे। जावा में गन्ने की बीमारियों का सामना करने के लिये इन्हीं रीतियों का अधिकांश रूप से काम में लाया जाता है। भारत सरकार की ओर से शक्कर के अनुसन्धान के लिये एक कमेटी बैठी थी। इसने गन्ने की पैदायश और शक्कर के उद्योग के कई पहलुओं पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डालने वाली एक रिपोर्ट लिखी है। उसमें एक जगह ध्यान देने योग्य ये विचार प्रकट किये हैं—

"जान पड़ता है कि योग्य रीति से खेती करना तथा अच्छी क़िस्मों को काम में लाना ही बीमारियों को वश में रखने और उन्हें दूर करने का महत्व-पूर्ण उपाय है ❀" हम भी पहले कह चुके हैं कि खेतों में अगर गहरी जुताई की जाय और योग्य रीति से फ़सल हेरफेर कर बोई जाय तो फ़सल को बीमारी लगने की बहुत ही कम सम्भावना रहेगी। गर्मी के मौसम की जुताई भी फसल के रोगों को रोकने का एक उपाय है। कहने का सारांश यह है कि योग्य रीति से खेती की पद्धतियों में सुधार करने से बीमारियों का डर बहुत कम रह जाता है। हाल ही में जावा से हिन्दुस्थान को लौटे हुए एक साहब ने कहा था,— "जावा में यदि गन्ने की इस्टेट में लाल रंग का फफूँद लग जाय तो वहां के मैनजर को नौकरी से अलग कर दिया जाता है। क्योंकि वहां अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि उक्त बीमारी या तो खेती करने की बुरी और अयोग्य रीतियों से होती है या ऐसी अयोग्य जाति के गन्नों की खेती करने से, जिन में इस बीमारी का सामना करने की ताक़त नहीं है।"

कहने का मतलब यह है कि बीमारी की रोक के लिये जहां खेती की पद्धतियों में सुधार करने की जरूरत है, वहां ऐसी क़िस्मों को ढूँढने की भी आवश्यकता है जिनमें बीमारियों का मुकाबला करने की ताक़त हो। मि० हॉवर्ड अपने "भारत की फ़सलें" (Crops in India) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—"यहां

❀ Sugar Committee Report)

हिन्दुस्थान में बीमारियों से बचने का सब से अच्छा उपाय फफूँद (फंगस) को नष्ट करने या उससे पौधे को बचाने की अपेक्षा उस किस्म को ही बदल देना है"।

इसके सिवाय भूमि में वायु प्रवेश के प्रबन्ध से ये बीमारियाँ कम हो सकती हैं। यह बात कुछ उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायगी। खेती करनेवाले पाठक जानते होंगे कि गन्ने को लगने वाली फफूँद हिन्दुस्थान के कुछ भागों में अधिकता से पाई जाती है। मध्य प्रान्त की काली, उत्तरी बिहार के द्वाबे की बहुत सी जमीनों में वायु का प्रवेश ठीक न होने से गन्ने को फफूँद लग जाती है। इससे इनमें निकलने वाली शक्कर की तादाद बहुत कम हो जाती है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं उक्त भूमि में वायु प्रवेश की गुंजाइश कम होने से ये बलाएँ लगती हैं। जिस भूमि में वायु-प्रवेश ठीक तरह होता है वहाँ बीमारी का जोर कम रहता है। इसका एक उदाहरण लीजिये। मध्य प्रान्त के "सिहबाही" नामक स्थान की काली मटियार भूमि में होने वाली गन्ने की काश्त पर अक्सर फफूँद लग जाती थी और इससे गन्ने की उपज भी कम बैठती थी। वहीं खेती जब चन्द्रखुरी की पीली हवादार जमीन में की गई तो दो आश्चर्यजनक बातें मालूम हुईं। पहली यह कि काली जमीन की अपेक्षा उक्त जमीन में गन्ना शीघ्र पैदा और छिले हुए गन्ने की उपज प्रति एकड़ लगभग ४० टन हुई। दूसरी आश्चर्य की बात यह हुई कि वहाँ गन्ने को फफूँद बिलकुल नहीं लगी। यहाँ यह बात भी न भूलना चाहिये कि दोनों जगह वर्षा

की औसत समान है और सिडवाही की काली जमीन मे, रासायनिक दृष्टि से, चन्दखुरी की जमीन की अपेक्षा ज्यादा उर्वरा शक्ति है। फिर क्या कारण है कि बढिया वाली जमीन से हलकी जमीन मे गन्ना अच्छा पैदा हुआ ? इसका कारण है। वह यह है कि सिडवाही की मटियार काली जमीन की बनावट वर्षा के समय आसानी मे बिगड जाती है। उसमें हवा का प्रवेश प्राय बन्द हो जाता है। इससे पौधों की बाढ कुदरती तौर से कम हो जाती है। वे कमजोर पड जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि कमजोरों पर दुश्मन जल्दी हमला कर बैठता है और वह कामयाब भी हो जाता है। बस यही दशा उक्त भूमि में उगने वाले पौधों की होजाती है। यही कारण है कि इस भूमि में पैदा होने वाले गन्ने मे बीमारी लग जाती है। इसके विपरीत चन्दखुरी की जमीन की बनावट कुछ ऐसी है कि उस पर ५० इञ्च वर्षा का बुरा प्रभाव नहीं पडता। इसमे वसम प्रवेश होने वाली वायु का मार्ग भी बन्द नहीं होता। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि वहाँ न तो पौधों की बाढ मे कोई रुकावट होती है और न उन पर कोई रोग ही लगता है। जावा देश के सम्पूर्ण अनुभवों से यही सार निकलता है कि जिस भूमि में पानी का ठीक बहाव हो जाता है, जिसमें अच्छी जुताई की जाती है और इन कारणों से जहाँ भूमि में ठीक तरह से वायु प्रवेश होता रहता है, वहाँ फसलें भली प्रकार फलती फूलती हैं और उन पर रोगों के आक्रमण भी नहीं होते।

क्वेटा में भी कुछ इसी प्रकार के अनुभव हुए। पाठक जानते हैं कि वहाँ बादाम तथा आडु आदि मेवे की खूब काश्त होती है। देखा गया कि जाडे के दिनों में इन पौधा पर अधिक सिचाई करने से इनमें इल्लियाँ लग जाती हैं पर साथ ही मे यह भी अनुभव हुआ कि जिन खेतों में गहरी जुताई की गई वहाँ इन इल्लियों का उपद्रव नहीं हुआ। इतना ही नहीं जहाँ ये इल्लिया लग भी गई थीं, वहाँ भी गहरी जुताई करने से इनका जोर बहुत कम हो गया। इन पेडों में पहले आई हुई पत्तियों में अधिक हानि हुई, पर उन्हीं वृक्षों की शाखों में, जुताई करने के बाद, आई हुई पत्तियाँ अच्छी और निरोग बनी रहीं। इसके अतिरिक्त एक विशेषता यह रही कि बीमारी पुरानी पित्तयों से नई पत्तियों की ओर कभी नहीं फैली।

कहने का सारांश यह है कि खेत की अच्छी और गहरी जुताई करने से, भूमि में वायु प्रवेश के लिये उचित प्रबन्ध कर देने से, भूमि को तैयार करने की रीतियों में परिवर्तन करने से, पौधों की रोगनिवारक शक्ति पर बहुत प्रभाव पडता है और वे बहुत सी बीमारियों क शिकार होने से बच जाते हैं।

इसके अतिरिक्त काश्त के लिये फ़सल की ऐसी जाति का बीज चुनना चाहिये जिसमें अधिक से अधिक रोग निवारक शक्ति हो। अनुभव से यह बात भी प्रकट हुई है कि जब बीमारी लगनेवाली और न लगनेवाली किस्मों की खेती पास ही पास की जाती है तो बीमारी न लगनेवाली क़िस्म में बीमारी नहीं फैलती।

पर जीते हैं तब वे उनन पर हमला करते हैं। इस प्रकार को बहुत नुकसान पहुंचता है।

खरपतवार के जीवन पर विचार करना आवश्यक है। अवस्था के मान से खरपतवार दो प्रकार के होते हैं। १—वर्षायु और २ बहुवर्षायु।

वर्षायु खरपतवार की जिन्दगी एक वर्ष से अधिक नहीं होती। कुछ पौधे तो पांच छः महीने से ज्यादा जी नहीं सकते। बीज पकते ही पौधा सूख कर मर जाता है। इनकी जड़ें जमीन में गहरी नहीं पैठतीं। बहुवर्षायु खरपतवार बरसों तक जीवित रहते हैं और अपनी जिन्दगी में कई बार फूलते फलते हैं। खेती और बगीचों में बहु-वर्षायु खरपतवार ही ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं और इन की वृद्धि रोकने के लिये ज्यादा मेहनत और पैसा खर्च करना पड़ता है।

खरपतवार कई प्रकार के होते हैं। जङ्गली भिंडी आदि कुछ पौधे सीधे बढ़ते हैं। दूब आदि जमीन पर फैलते हैं। चांदनेल आदि सहारे से ऊपर चढ़ते हैं। नागरमोथा आदि कुछ के तने भूमि के अन्दर रहते हैं, जिनसे नवीन पौधे पैदा होते रहते हैं। भूमि के भौमिक तने से भी नये पौधे जन्म लेते हैं। कुछ खरपतवार ऐसे भी हैं, जो उखाड़ कर खेत में पटक देने से झट जड़ पकड़ लेते हैं। खरपतवार कैसे फैलते हैं।? अधिकांश वर्षायु खरपतवार के पौधे बीज से ही पैदा होते हैं। इनके बीज कई तरह से फैलते हैं। बहुत से पौधों के बीज उड़कर जमीन में फैल

जाते हैं। बहुत से खर पतवार के बीज फ़सल के बीज के साथ खेतों में पड़ जाते हैं। मींगनी के खाद या पशु पक्षियों के विष्ठा के साथ ये खेतों में फैल जाते हैं। गोबर और कूड़े के खाद के कारण भी खेतों में बहुत से खर पतवार उग आते हैं।

बहु वर्षायु खर-पतवार भौमिक तनों के टुकड़ों से फैलते हैं कुछ बहु-वर्षायु खर-पतवार कन्द मूल आदि द्वारा भी फैलते हैं।

खेतों में वर्षायु खर-पतवार घास पात आदि उग आते हैं। इन्हें फूल आने के पहले ही उखाड़ कर फेंक देना चाहिये। यदि खेत में फ़सल नहीं बोई गई हो तो पानी बरसने के बाद ही खर पतवार के उगने पर बखर या हैरो या हल चलाकर खेत को जोत देना चाहिये। ऐसा करने से कम मेहनत और थोड़े खर्च में खेत साफ़ किए जा सकते हैं। फ़सल बोने के बाद में खेतों में खर-पतवार घास पात उग आवें तो पहले डौरा कुलिया आदि चलाकर दो कतारों के बीच का घास पात नष्ट किया जा सकता है। फ़सल की कतार में उगे हुए खर-पतवार को हाथ से उखाड़ डालना चाहिये। फूल आने के पहले ही इनको उखाड़ डालना चाहिये। साफ़ बीज ही खेतों में बोया जाना चाहिये और इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये कि खाद के ढेर पर सत्यानाशी, ऑधी झाड़ा आदि पौधों के पके हुए बीजवाले पौधे न डाले जावें। यदि खर-पतवार के बीज खाद के ढेर पर भूल से फेंक दिए जाँय, तो उन्हें उगने के बाद फूल आने के पहले ही उखाड़ डालना चाहिये।

बढ़ गई है। इसी कारण विदेशों में माल चढ़ानेवाले कितनेही व्यापारियों का यह कथन है कि कुछ ही वर्षों में वह समय आ पहुँचेगा, जबकि भारतवासी न केवल अपना गेहूँ विदेशों को भेजने में असमर्थ हो जावेंगे वरन् उनको अपने खर्च के लिए भी विदेशों से गेहूँ खरीदने की आवश्यकता होगी।

कृषि विशारदों का कथन है कि अगर भारतवर्ष में विशाल पाये पर गेहूँ की खेती की जाय तो उसकी उपज में इतनी वृद्धि हो सकती है कि वह अपनी आवश्यकताओं को भली प्रकार पूरी कर सके। भारत में इस पदार्थ की पैदावार में कमी आने का कारण यह है कि यहाँ इसकी खेती वैज्ञानिक ढंग से नहीं की जाती। इसके अतिरिक्त यहाँ किसानों के खेत छोटे २ रहते हैं जिससे किसानों को भारत का खर्च तो ज्यादा पड़ता है और पैदावार कम होती है। अतएव यहाँ के किसानों को चाहिये कि वे चकबन्दी से वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर खेती करें, जिससे कम से कम खर्च और रकबे में अधिक से अधिक उपज हो सके। देखा गया है कि जहाँ वैज्ञानिक पद्धति से खेती की गई है वहाँ उपज में अच्छी वृद्धि हुई है। शाहजहाँपुर में नवीन वैज्ञानिक पद्धति से खेती की गई और उसका नतीजा यह हुआ कि पैदावार में दूनी वृद्धि हुई।

— —

निम्नांकित तालिका से इस बात का पूरा पता लगता है —

फसल का नाम	नवीन पद्धति के द्वारा उपज	साधारण पद्धति के द्वारा उपज
गेहूँ (न० १२)	३००३ पौंड	१५०२ पौंड
चना	२४०१ ,,	११०५ ,,
गन्ना	८४१०० ,,	४५०६ ,,

गेहूँ की खेती के लिये जमीन

गेहूँ की खेती के लिये वह जमीन ज्यादा अच्छी होती है जिसमें बालू (रेत) का कम हिस्सा हो तथा जिसमें आल (नमी) रखने की अधिक शक्ति हो। काली मिट्टी वाली भूमि में ये गुण पाये जाते हैं। अतएव अनुभवी किसान गेहूँ की अच्छी पैदावार के लिए काली मिट्टी वाली जमीन को सबसे ज्यादा पसन्द करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि जिस भूमि की मिट्टी जितनी अधिक काली होगी उसमें गेहूँ की पैदावार भी उतनी ही अच्छी होगी। इसके अतिरिक्त गेहूँ की खेती के लिये दुम्मट भूमि भी अच्छी मानी गई है। दुम्मट भूमि में एक विशेषता यह है कि उसकी मिट्टी न तो चिकनी मिट्टी के समान चिपकने वाली ही होती है और न इतनी कड़ी ही होती है कि जिसकी जुताई करना कठिन हो।

जमीन की तैयारी

अन्य पदार्थों की खेती के समान गेहूँ की खेती में भी जहां अच्छी और गहरी जुताई की जाती है, वहाँ गेहूँकी पैदावार अच्छी होती है। बिना आबपाशी की खेती में तो जुताई का सब से अधिक महत्व है। जमीन की जितनी अधिक जुताई की जायगी, उसमें उतनी ही अधिक नमी बनी रहेगी। इसके अलावा जमीन की गहरी जुताई से पौधों की जड़ें जमीन में अधिक घुस जाती हैं और वे अपना खाद्य द्रव्य जमीन की तह में से आसानी से खींच सकती हैं। इसलिये जमीन में बार बार हल व बक्खर चला कर सात आठ इञ्च गहरी जुताई कर देना चाहिये। कई किसान केवल चार पाँच इञ्च गहरी जुताई कर गेहूँ बो देते हैं। इसमें पैदावार अच्छी नहीं होती, क्योंकि एक तो बरसात का अधिक से अधिक पानी भूमि में समा नहीं सकता, दूसरे पौधों की जड़ें जमीन के अन्दर गहरी नहीं पैठ सकतीं। इस प्रकार काफी खुराक न मिलने के कारण पौधे नहीं बढ़ सकते। कानपुर के कृषि प्रयाग क्षेत्र के अनुभवों से पता लगता है कि नवीन ढङ्ग के हलों द्वारा गहरी जुताई करने के पश्चात् देशी हलों द्वारा जुताई करने से अधिक फायदा होता है। क्योंकि ऐसा करने से जमीन खूब पोली हो जाती है और उसमें काफी नमी इकट्ठी हो जाती है। जुताई से यह भी लाभ होता है कि नीचे की तह की मिट्टी ऊपर आ जाती है और उसे धूप व हवा मिल जाती है, जो कि

ज़मीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने में सब से अधिक आवश्यक है। इस प्रकार वह भूमि उपजाऊ बन जाती है। इसके अतिरिक्त गहरी जुताई से खेत में उगने वाले घासपात जड़ों सहित निकल कर मिट्टी में मिल जाते हैं और सड़ जाने पर खाद का काम देते हैं।

इस फसल के लिये ज़मीन की जुताई अकसर बरसात में होती है। ज्यों ही बरसात बन्द हो जावे, त्यों ही उसमें जुताई शुरू कर देना चाहिये। इस के लिये ज़मीन में ग्रीष्म ऋतु में भी हल चला दिये जावें तो बहुत फ़ायदा होता है। इसके निम्न लिखित कारण हैं।

(१) ग्रीष्म ऋतु की तेज़ धूप से ज़मीन बड़ी उपजाऊ हो जाती है।

(२) वह बरसात का सारा का सारा पानी सोख सकती है। इससे उस में काफी नमी बनी रहती है।

(३) यदि कहीं बरसात कम भी हो तो भी फसल अच्छी हो सकती है। यहाँ तक कि कई प्रदेशों में जहाँ केवल दस पन्द्रह इञ्च वर्षा होती है, इसी जुताई के कारण गेहूँ की फसल होती है।

कोई कोई भूमि बहुत कड़ी होती है। इससे उसमें गरमी के मौसम में हल चलाना असम्भव सा हो जाता है। अतएव इस प्रकार की ज़मीन में जुताई करने से पहले गर्मी के दिनों में एक बार सिंचाई कर देना चाहिये, और सवेरे के समय उसमें पत्थर फेर देना चाहिये जिस से उथल पुथल हुए हुए ढेले एक सरीखे हो

बङ्गाल के सुप्रसिद्ध कृषि विद्या-विशारद मि० एस० सी० सेन महाशय ने गेहूं की काश्त के विषय में जो तजुर्बे किये हैं उनके आधार पर आप लिखते हैं —

"मेरी राय मे हर बाघे के पीछे जुवाई के समय २० बोरे गोबर या एक मन हड्डी का खाद डालना चाहिये। जब गेहूं के पौधे फलने फूलने लगें तब ५ सेर शोरा भी डाल दिया जाय। इससे फसल पर अच्छा प्रभाव पडेगा। तालाब की मिट्टी भी गेहूं की फसल के लिय उम्दा खाद है।'

शिवपुर कॉलेज के भूतपूर्व प्रोफेसर स्वर्गीय नित्यगोपाल मुकर्जी अपने "Hand Book of Indian Agriculture" नामक विख्यात ग्रन्थ मे लिखते हैं —

"गेहूं के खेत में प्रति एकड डेढ मन शोरा छिडकने से बहुत ही अच्छा परिणाम निकलता है। यह गेहूं का सब से अच्छा खाद है। इसके अतिरिक्त देश की परिस्थिति और जमीन की अवस्था पर खाद का निश्चय किया जा सकता है।"

मि० अलबर्ट हावर्ड, सी० आइ० ई०, एम० ए० ने "Wheat in India' नामक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। भारत वर्ष के विभिन्न प्रदेशों में गेहूं की काश्त के सम्बन्ध जो प्रयोग हुए हैं उनका आपने बड़ा मनोरञ्जक वृत्तान्त इस ग्रन्थ में दिया है और साथ ही साथ अपने अनुभव भी प्रकाशित किये हैं। उक्त ग्रन्थ मे गेहूं के खाद के सम्बन्ध में एक विस्तृत अध्याय है। गेहूं

की काश्त में काम आने वाले विभिन्न खादों के प्रयोगों पर प्रकाश डालने के पश्चात् आप लिखते हैं —

"यह बात स्पष्ट है कि गेहूं की अंकुरण शक्ति के विकास के लिये जमीन में नमी और उचित मात्रा में नाइट्रोजन का होना आवश्यक है। इन दोनों बातों की पूर्ति ढोरों के गोबर से भली भाँति होसकती है। गोबर का खाद शोरे के खाद से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इससे जमीन को अधिक नमी रखने की शक्ति प्राप्त होती है, जो गेहूँ की खेती के लिये अत्यन्त आवश्यक है। शोरे का खाद भी इसके लिये एक अच्छा खाद है परन्तु इस योग्य समय पर उचित सीमा में देना चाहिये। इसके बार २ देने से नुकसान होने का डर रहता है। गेहूँ की काश्त के के लिये हरी खाद की भी सिफारिश की सकती है। पर इसका भी निरन्तर उपयोग विशेष लाभकारी नहीं, क्योंकि हरा खाद जिन फसलों से बनता है उनसे जमीन की नमी पर हानिकारक प्रभाव गिरता है।"

मतलब यह है कि मि० हावर्ड, गत पृष्ठों में बतलाया हुआ, कम्पोस्ट खाद या यथा विधि तैयार किया हुआ गोबर का खाद ही गेहूँ की फसल के लिये सर्वोत्कृष्ट समझते हैं।

भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में गेहूँ की फसल पर विभिन्न खादों के प्रयोगों के जो परिणाम निकले हैं उन पर प्रकाश डालना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

। कानपुर में गेहूँ की फसल पर विभिन्न प्रकार के कृत्रिम व साधारण खादों के प्रयोग किये गये, उन सबके वर्णन करने से यहाँ विशेष लाभ नहीं है। इन प्रयोगों से सुप्रख्यात कृषि-विद्या विशारद मि० हावर्ड ने जो नतीजे निकाले हैं, उन्हें हम उन्हीं के शब्दों में नीचे देते हैं—

"गेहूँ के खाद में सबसे अधिक आवश्यकता नाइट्रोजन की है और यदि नमी व आबहवा अच्छी हुई तो यही केवल एक ऐसा पदार्थ है, जिस पर गेहूँ की उपज की वृद्धि निर्भर है। पशुओं के मल-मूत्र में नाइट्रोजन रहता है। अतएव विधि अनुसार तैयार किया हुआ गोबर का खाद देने से गेहूँ की फसल की तरक्की की जा सकती है। कानपुर के प्रयोगों से यह भी मालूम हुआ कि पोटेशियम नाइट्रेट का खाद लगातार देते रहने से उसका ज़मीन पर बुरा असर पड़ता है। यहाँ पर पाठकों का ध्यान इस बात पर भी खींचना ज़रूरी है कि सन् १८९४ ई० के बाद जब से कानपुर में गहरी जुताई क प्रयोग जारी किये गये हैं, गेहूँ की फसल में बढ़ती होने लगी है। अतएव इससे यह बिलकुल निश्चित है कि खाद का असर तभी हो सकता है जब कि खेत की गहरी जुताई की जावे।'

"इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि (१) गर्मी के दिनों की अच्छी व गहरी जुताई (२) अच्छी वर्षा और (३) विधि-पूर्वक तैयार किया हुआ गोबर का खाद ये ही तीन बातें गेहूँ की अच्छी उपज

के प्रश्न को हल कर सकती है। जहाँ मुमकीन हो वहाँ सन का हरा खाद देने से भी गेहूँ की उपज में सहायता मिल सकती है।"

अन्य स्थानों के प्रयोग

नागपुर के कृषि क्षेत्र में भी कई प्रयोग किये गये। सन् १८८३-८४ ई० में मि० फुलर नामक एक कृषि विद्या विशारद ने गेहूँ की फ़सल में लगनेवाले खादों के सम्बन्ध में अन्वेषण शुरू किये। पहले दो वर्षों में कुछ ऐसी दैवी दुर्घटनाएं हो गई जिस से उनके अन्वेषण का कोई फल दिखलाई नहीं पड़ा। सन् १८८५-८६ ई० में गेहूँ बोने के समय वर्षा की कमी रही और दिसम्बर में आवश्यकता से अधिक वर्षा हुई और खूब ठंडी हवा चली। इससे सरकारी फार्म के गेहूँ की फ़सल पर गेरुआ रोग लग गया। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि यह रोग उन स्थानों में अधिक लगा जहाँ एमोनियम क्लोराइड का कृत्रिम खाद दिया गया था। इसके दूसरे साल फ़सल बोने के समय अधिक वर्षा हुई और इससे खेत में डाला हुआ सारा खाद बह गया। इससे उस खाद का कोई असर दिखलाई नहीं पड़ा। इसके बाद कई वर्षों तक प्रयोग जारी रहे। नागपुर के पिछले प्रयोगों से यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट हुई कि गेहूँ की खेती के लिये नाइट्रोजन एक आवश्यक पदार्थ है। नाइट्रोजन युक्त खाद से वहाँ बहुत ही अच्छे नतीजे निकले। खाद और आबपाशी का मेल हो जाने से गेहूँ की पैदावार में और भी अधिक वृद्धि हुई।

अन्य प्रयोग

बिहार के डुमराव प्रयोग क्षेत्र मे गेहूँ की खेती पर शोरा, गोबर तथा अन्य खादों के प्रयोग किये गये। इन सब के परिणामों से यह प्रगट हुआ कि इन खादों ने फ़सल की बढ़ती पर सब मे अच्छा असर डाला, जिन मे नाइट्रोजन की मात्रा सब से अधिक थी। नाइट्रोजन युक्त खाद और आबपाशी के मेल स सब से अधिक फ़सल पैदा हुइ। हरी खाद से उस समय अच्छा फ़ायदा हुआ, जब बोनी के समय अच्छी वर्षा हो गई थी।

खाद से फ़सल के गुण में वृद्धि

आधुनिक कृषि विद्या विशारदों ने निरन्तर प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि उचित प्रकार का खाद देने से अनाज के गुण में वृद्धि होती है। केवल भारतवर्ष ही में नहीं, वरन् संसार के अनेक देशों के अनुभवों से यह प्रगट हुआ है कि जिन फ़सलों को उचित प्रकार का खाद दिया गया, उनके दाने हृष्ट पुष्ट हुए। जहां ऐसा नहीं किया गया, वहां न केवल फ़सल ही कमज़ोर हुई वरन् दाने भी कमज़ोर हुए। यूरोप के रॉथेमस्टेड' नामक स्थान के प्रयोगों न यह सिद्ध किया है कि उचित प्रकार के खाद से गेहूँ की केवल पैदावार ही ज्यादा नहीं होती वरन गेहूँ भी हृष्ट पुष्ट होता है।

युरोप में गेहूँ की पैदायश

युरोप में कई जगह पोटाश जनित खादों से भी गेहूँ की फ़सल पर अच्छा असर पड़ा। पर भारत के लिये यह उतना उपयुक्त नहीं है। दक्षिण हैदराबाद के कृषि विभाग के भूत-पूर्व डायरेक्टर म० जान फीनी अपनी "Intensive Farming in India" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"ससार भर में डची ऑफ् एनहल्ट नामक स्थान में गेहूँ की सब से अधिक पैदायश होती है। वहा प्रति एकड के पीछे ९९६ सेर गेहूँ की पैदायश होती है। उक्त प्रदेश में पोटाश की बडी बडी खानें हैं। यहा पोटाश सस्ता होने के कारण लोग इसे खाद के काम में लेते हैं।"

प्रोफ़ेसर वागनर और मार्कर ने यह प्रगट किया है—

"पोटाश जनित खादों के प्रयोग से (Potashic manre) उस भूमि की अपेक्षा जिस से खाद नहीं दिया गया है, १४७० पौंड या ७३५ सेर गेहूँ अधिक पैदा हुआ है। चाहे जमीन अच्छी हो चाहे खराब हो पोटाश जनित खादो से उसकी उपजाऊ शक्ति बढती है और उपज अच्छी होती है। बेल्जियम की भूमि में पोटाश का ज्यादा अंश है और यही कारण है कि वहा की भूमि में बहुत गेहूँ पैदा होते हैं।"

डा० स्केंडी विन्ड के मत मे खाद्य द्रव्यों के लिये पोटाश जनित खाद बहुत ही लाभदायक है। म्यूरियट ऑफ पोटाश

जिस में साधारण नमक की अपेक्षा पोटाश का चौगुना हिस्सा रहता है, अत्युत्तम खाद का काम दे सकता है।

बेल्जियम के सुप्रसिद्ध प्रोफेसर एच० वोरियट खाद्य द्रव्यों के जल्दी पकने के लिये और पुष्ट दानों की उत्पत्ति के लिये फॉस्फरिक एसिड की सिफारिश करते हैं।

आस्ट्रेलिया के किसान फास्फरिक जनित खाद (Phosphetic manures) पर अधिक अवलम्बित रहते हैं, परन्तु इसमे आगे चल कर जमीन में रहे हुए नाइट्रोजन और पोटाश की मात्रा कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि गेहूँ की फसल मे बहुत कमी आ जाती है और किसानों को नुकसान पहुँचता है। परन्तु वहा फास्फरिक एसिड की उपयोगिता बहुत कुछ सिद्ध हो चुकी है।

प्रोफेसर जान बेली जिन्होंने प्रति एकड़ ७७ मन गेहूँ पैदा किया है लिखते हैं कि—

"फास्फरिक एसिड जनित खादों से गेहूँ की खेती में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है।"

बोने के लिये बीज

किसी भी फसल का दारोमदार बहुत कुछ उसके बीज पर है। खेत की चाहे जितनी अच्छी जुताई की जाय, उसमें चाहे जितना उत्तम खाद डाला जाय, पर यदि बीज अच्छा न होगा तो फसल अच्छी न आयगी। इसलिये हमारे किसान भाइयों

का सब से प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वे खेती के लिये अच्छे से अच्छा बीज चुनें। बीज चुनने के लिये नीचे लिखी विशेषताएं ध्यान में रखना चाहिये—

(१) बीज हृष्ट पुष्ट और निरोग हो।

(२) ऐसे गेहूँ का बीज हो, जिस में गेरुआ लगने की कम सम्भावना हो।

(३) ऐसे बीज में पाले का मुकाबला करने की ताक़त हो, अर्थात उस बीज से पैदा होनेवाली फसल को पाले से कम हानि पहुँचे

(४) शीघ्र पकने वाले गेहूँ का बीज हो।

(५) ऐसे गेहूँ का बीज हो, जिस का आटा लसदार हो, चापड़ कम निकले व साथ ही रोटी मीठी और स्वादिष्ट हो और वह पिसाई में भी अच्छा हो।

जिस बीज में ये सब गुण हों, उस ही अच्छा समझना चाहिये। इस प्रकार का बीज पूसा नं० ४ और १२ है। इनकी उपरोक्त विशेषताओं को देख कर बहुत से कृषि क्षेत्रों पर इनका प्रयोग किया गया। तथा ताल्लुकेदारों व जमींदारों ने भी इन्हें बो कर अनुभव किया तो बहुत अच्छी पैदावार हुई।

इन्दौर के सेन्ट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर महोदय की सलाह के अनुसार इन्दौर राज्य के सांवेर परगने के पालिया नामक स्थान के किसान मि० मंगतराय गुप्ता ने अपने फार्म पर पूसा नं० ४ का अनुभव किया और उन्हें इसमें आशातीत

सफलता मिली। इससे यह सिद्ध होता है कि यहां की भूमि के लिये पूसा नं० ४ व १२ आदि गेहूँ उपयुक्त हैं। मुजफ्फरनगर के सफेद गेहूँ की जाति भी अच्छी होती है, पर वह पूसा नं० ४ व १२ की सानी नहीं रखती। यह गेहूँ बिना आबपाशी के भी हो सकता है।

बीज के चुनाव के समय नीचे लिखी हुई बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) बीज फसल के पक जाने के बाद प्राप्त किया गया हो और सर्दी से बचा कर रखा गया हो। फसल के अच्छी तरह पकने के पहिले निकाला हुआ बीज अच्छा नहीं उगता और उसमें पैदावार हलकी होती है।

(२) बीज ज्यादा पुराना न हो। जहाँ तक बन सके नये साल की फसल का हो।

(३) कीड़ों का खाया हुआ या कुतरा हुआ न हो।

(४) बीज में किसी तरह का रोग न हो।

(५) इसमें से अच्छे बीज अलग छाँट लिये गये हों।

अच्छे बीज की परीक्षा।

(१) गेहूँ के १०० बीज लेकर गुनगुने पानी में डाल दो। यदि ६० या ७० से अधिक दाने पानी में बैठ जावें तो बीज को अच्छा समझना चाहिये अन्यथा नहीं।

(२) गेहूँ के १०० बीज लेकर किसी बर्तन में थोड़ी सी मिट्टी डालकर बोदो, और उसमें थोड़ा सा पानी छिड़क दो। जब सब दाने उग आवें तो उन्हें गिनो। यदि उनमें ६० या ६० से अधिक दाने उग आवें तो बीज चुनलो।

(३) कच्चे दानों को दाँतों से चबाकर देखो कि दानों में लस और गोंद पूरा है या नहीं और उसका लज्जत अच्छी है या नहीं। यदि इस प्रकार जाँच नहीं कर सको तो आटा पिसवा कर उसकी रोटी खाकर परीक्षा करलो।

(४) दस या बीस बीज पानी में भिगो दो। जब बीज भली भाँति भीग जावें तो देखो कि वे अच्छी तरह फूले हैं या नहीं। यदि सब दाने एक सरीखे फूल कर खूब मोटे हो गये हों और उनमें से साफ़ सफेद दूध निकलता हो तो समझ लो कि बीज अच्छे हैं। जब यह परीक्षा हो जाय तब उन दानों को गिनकर भूमि में बो दो। जब पौधा बड़ा हो जावे तब उसके पत्तों को ध्यान पूर्वक देखो। यदि पत्ते सुहावने और अच्छे रंग के हों तो निश्चय करलो कि बीज बहुत बढ़िया है।

गेहूँ के बीजों की अंकुरण शक्ति जाचने की रीति

किसानों के लिये यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन बीज में किस प्रकार की अंकुरण शक्ति है। इस विषय पर पंजाब सरकार के इकॉनामिक बोटेनिस्ट लाला जयचन्द्र लूथ्रा आय०

जुताई का समय	सुधरे हुए हल से ८ इंच गहरी जुताई ४ वक्त	सुधरे हुए हल से ५ इंच गहरी जुताई ४वक्त	देशी हल से ४ इंच गहरी जुताई ८ वक्त
	सेर	"	"
सन १८८३ से १८८६ तक की औसत	९८०	६२९	४८१
सन १८८७ से १८९० तक की औसत	८३४	२६३	६०७
सन १८९१ से १८९४ तक की औसत	१०७५	९९६	८६९
सन १८९५ से १८९८ तक की औसत	८८१	७८४	८६७

उपरोक्त तालिका से अथवा अन्य इसी प्रकार के कई तजुर्बो से यह स्पष्टतया प्रगट हो गया है कि जहां जहां गहरी जुताई की गई, वहां उपज में अच्छी वृद्धि हुई। विहार के डुँमराव नामक स्थान के कृषि प्रयोग क्षेत्र में भी इस सम्बन्ध में प्रयोग (Experiments) किये गये। वहां भी गहरी जुताई के अच्छे प्रायः नजर आये। हां! कहीं कहीं कभी कभी किसी विशेष परिस्थिति के कारण गहरी जुताई से फसल पर कुछ विपरीत

परिणाम भी देखे गये हैं। पर ऐसे अवसर कचित ही उपस्थित होते हैं। अकसर गहरी जुताई से फायदे ही नजर आये हैं।

यहा एक और महत्व की बात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि बोनी के पूर्व एल्यूवियम (Alluvium) जमीन को तैयार कर लेना चाहिये। मि० हावर्ड साहब का कथन है कि पूसा में हम ने इस बात के प्रयोग किये कि जमीन की तैयारी के साथ ही साथ उसमें बिना खाद ही के नाइट्रोजन की पूर्ति हो जावे। यह बात पहिले पहल असम्भव जची। पर अनुभव से इसकी सत्यता प्रगट हुई। उक्त कार्य की सफलता निम्न विधि से हुई। जमीन की कई बार जुताई करने के बाद उसे अप्रैल, मई और जून की बिलकुल सूखी हुई गर्म हवा और सूर्य की धूप में खुला छोड़ दिया। इसका भारी फसल पर अत्यन्त आश्चर्यकारक प्रभाव गिरा। देखा गया कि जब जब खेत की मिट्टी हल से उथल पुथल कर गर्म धूप और हवा के अभिमुख नहीं की गई तब २ फसल पर बुरा असर पड़ा। अनुभव से यह भी जाना गया है कि गेहूँ की फसल कट जाने के बाद जमीन को उन्हाले की गर्म गर्म हवा और धूप खिलाई जावे तो इसका फसल पर बहुत ही बढ़िया प्रभाव पड़ता है। इङ्गलैण्ड में यहाँ की तरह गर्म मौसम नहीं होती। इसलिये वहां गेहूँ की खेती में कृत्रिम उपायों के द्वारा यह क्रिया की जाती है। जमीन की मिट्टी को इस प्रकार गर्म हवा और धूप खिलाने से फसल तो ज्यादा आती ही है पर इसके साथ साथ ऊँचे दर्जे का अनाज भी पैदा होता है।

गर्मी के दिनों मे गेहूँ के खेत को गर्म हवा और धूप खिलाने से तथा वर्षा ऋतु म जब जब वर्षा बन्द हो, तब तब हल बखर चलाने से गेहूँ की फसल पर उसके बाज की बनावट पर बहुत ही उत्तम प्रभाव देखा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। इससे जमीन में जल शोषण की अधिक शक्ति उत्पन्न होती है।

बोनी।

गेहूँ की बोनी १५ अक्टूबर यानी कार्तिक म आरम्भ होकर १५ नवम्बर यानी अगहन के मास तक समाप्त हो जाना चाहिये। बीज बोने के पहले भूमि को भली भाँति जोत कर एक सरोखी कर लेना चाहिये जिससे पौधों की जडें भूमि में बिना रोक टोक गहरी जा सकें। यदि इस समय भूमि सूखी जान पडे तो बखर फेर कर उसको मिट्टी उलट पलट कर देना चाहिये जिससे बीज का नीचे स तरी जल्दी मिल सके।

बीज बोते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बीज जमीन में इतना गहरा डालना चाहिये कि उसे ओल मिलती रहे। ओल से गेहूँ का पौधा भली भाँति बढ़ता है। हमारा ख्याल है कि कि बाज चार पाँच अंगुल गहरा डाला जावे। यदि इस जिन्स की बोनी 'उढालू फड़क' से की जाय तो विशेष फायदा हो सकता है। बीज को बहुत पास २ न बोना चाहिये। यदि कहीं कहीं ऐसा हो जावे तो जब पौधे उगें उस समय फाजलू पौधों को भूमि से उखाड़ कर फेंक देना चाहिये जिससे प्रत्येक पौधा भली भाँति

बढ़कर सम्हल सकें। कम से कम हर एक पौधे के बीच में ४, ५ इञ्च का फासला रखा जावे, जिससे कि पौधे अच्छी तरह से बढ़ सकें। हम यह निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि प्रति बीघा कितना बीज डालना चाहिये। इसका कारण यह है कि हर एक स्थान की हालत व आबहवा जुदी २ रहती है। बंगाल में प्रति बीघा २० सेर से ३५ सेर तक, पञ्जाब में ३८ सेर से ४५ सेर तक बम्बई में २५ सेर से भी कम, संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध में ४० सेर से ५० सेर तक, मालवे में ३० सेर से लगाकर ४० सेर तक बीज बोया जाता है। जिन स्थानों में बीज के सड़ जाने का डर हो वहाँ ज्यादा बीज बोना चाहिये। यदि देर से बोनी की जावे तो भी बीज कुछ अधिक बोना चाहिये।

बीज बोने के बाद खेत को एक या दो दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये और इसके बाद फिर बक्खर फिराना चाहिये। जिन खेतों में आबपाशी होती हो उनमें बक्खर फेरने के बाद पानी के लिये नालियाँ बना देना चाहिये।

आबपाशी

गेहूँ एक ऐसी फसल है जिसमें आबपाशी विशेष लाभदायक होती है। पञ्जाब व संयुक्त प्रदेश में जहाँ नहरों के द्वारा आबपाशी में आश्चर्यजनक उन्नति हो गई है, वहाँ आधी से ज्यादा फसल आबपाशी के द्वारा पैदा होती है। पर मध्य-प्रदेश, मध्यभारत, बम्बई तथा बरार आदि स्थानों में नहरों द्वारा होने

गर्मी के दिनों म गेहूँ के खेत को गर्म हवा और धूप खिलाने से तथा वर्षा ऋतु में जब जब वर्षा मन्द हो, तब तब हल बखर चलाने से गेहूँ की फसल पर उसके बाज की बनावट पर बहुत ही उत्तम प्रभाव देखा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। इससे जमीन में जल शोषण का अधिक शक्ति उत्पन्न होती है।

बोनी।

गेहूँ की बोनी १५ अक्टूबर यानी कार्तिक से आरम्भ होकर १५ नवम्बर यानी अगहन के मास तक समाप्त हो जाना चाहिये। बीज बोने के पहले भूमि को भली भाँति जोत कर एक सरोखी कर लेना चाहिये जिससे पौधों की जड़ें भूमि में बिना रोक टोक गहरी जा सकें। यदि इस समय भूमि सूखी जान पड़े तो बखर फेर कर उसकी मिट्टी उलट पलट कर देना चाहिये जिससे बीज का नीचे म तरी जल्दी मिल सके।

बीज बोते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बीज जमीन में इतना गहरा डालना चाहिये कि उस ओल मिलती रहे। ओल से गेहूँ का पौधा भली भाँति बढ़ता है। हमारा ख्याल है कि बीज चार पाँच अंगुल गहरा डाला जावे। यदि इस जिन्स की बोनी 'उ-हालू फड़क' म की जाय तो विशेष फायदा हो सकता है। बीज को बहुत पास २ न बोना चाहिये। यदि कहीं कहीं ऐसा हो जावे तो जब पौधे उगें उस समय फालतू पौधों को भूमि मे उखाड़ कर फेंक देना चाहिये जिससे प्रत्येक पौधा भली भाँति

ड़कर सम्हल सके। कम से कम हर एक पौधे के बीच में ४, ५ इञ्च का फासला रखा जावे, जिससे कि पौधे अच्छी तरह से बढ़ सकें। हम यह निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि प्रति बीघा कितना बीज डालना चाहिये। इसका कारण यह है कि हर एक स्थान की हालत व आबहवा जुदी २ रहती है। बंगाल में प्रति बीघा २० सेर से ३५ सेर तक, पञ्जाब में ३० सेर से ४५ सेर तक बम्बई में ७५ सेर से भी कम, संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध में ४० सेर से ५० सेर तक, मालवे में ३० सेर से लगाकर ४० सेर तक बीज बोया जाता है। जिन स्थानों में बीज के सड़ जाने का डर हो वहाँ ज्यादा बीज बोना चाहिये। यदि देर से बोनी की जावे तो भी बीज कुछ अधिक बोना चाहिये।

बीज बोने के बाद खेत को एक या दो दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये और इसके बाद फिर बक्खर फिराना चाहिये। जिन खेतों में आबपाशी होती हो उनमें बक्खर फेरने के बाद पानी के लिये नालियाँ बना देना चाहिये।

आबपाशी

गेहूँ एक ऐसी फ़सल है जिसमें आबपाशी विशेष लाभदायक होती है। पञ्जाब व संयुक्त प्रदेश में जहाँ नहरों के द्वारा आबपाशी में आश्चर्यजनक उन्नति हो गई है, वहाँ आधी से ज्यादा फ़सल आबपाशी के द्वारा पैदा होती है। पर मध्य प्रदेश, मध्यभारत, बम्बई तथा बरार आदि स्थानों में नहरों द्वारा होने

वालों आवपाशी का विशेष प्रचार नहीं है। कई कृषि-विद्या-विशारदों के अनुभवों से यह बात सिद्ध हुई है कि आवपाशी द्वारा मामूली पैदावार से ड्योढ़ो या दुगनो पैदावार होती है। अतएव आवपाशी के द्वारा इस जिन्स का पैदा करना विशेष लाभकारक है।

आवपाशी के लिये केवल चार बार पानी देने की जरूरत होती है। पानी पहली दफा बीज बोते वक्त दिया जाता है। यदि बरसाती पानी काफी मात्रा में गिर गया हो तो इस समय पानी देने की आवश्यकता नहीं होती। यह पानी बीज बोने के २-४ दिन पहले दिया जाता है, जिससे खेत में पौधों के उगने तक बराबर ओल बनी रहे। दूसरा पानी गेहूँ के पौधे एक दो इञ्च लम्बे होने पर दिया जाता है। इसके बाद तीसरा पानी गेहूँ की बालियाँ निकलने के समय दिया जाता है। जब बालियों में दाने निकलने लग जावें तब पानी बिलकुल बन्द कर देना चाहिये। इसका कारण यह है कि इस समय पानी देने से पौधों में बड़े भयंकर रोग (जैसे गेरुआ आदि) पैदा हो जाते हैं। किसी २ जाति के गेहूँ की केवल २ या तीन बार सिंचाई करने से पैदावार आजाती है। इन जातियों में से, जैसा हम पहले कह आये हैं पूसा नं० १२ भी एक है।

कानपुर के कृषि प्रयोग क्षेत्रों में इस बात की जाँच की गई थी कि अधिक से अधिक गेहूँ की फसल का कितने पानी की आवश्यकता होती है। उससे हमें पता लगता है कि गेहूँ को अधिक से अधिक ५ पानी की जरूरत होती है। यदि इससे अधिक पानी दिया गया तो फसल बिगड़ जाती है। अधिक पानी

देने से इस फसल का उतनी ही हानि होती है कि जितनी कम पानी देने से होती है। यदि बहुत ज्यादा पानी दिया गया तो गेहूँ के दानों की बनावट बराबर नहीं होती और उसकी क़ीमत भी बराबर नहीं आती। मि० हावर्ड महोदय अपने 'Wheat in India' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि 'सिंचाई की बुराई' विलायत में बहुत बड़ी बुराई गिनी जाती है। अतएव बोये हुए खेत में इस प्रकार सिंचाई करना चाहिये कि पानी रेंगता हुआ व भूमि से सूखता हुआ आगे बढ़े और एक ही स्थान पर न भर जाय। इसी एक खास सहूलियत के कारण कुँए की सिंचाई से नहरों की सिंचाई की अपेक्षा अधिक पैदावार होती है। इसके अतिरिक्त कुँए के पानी म कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं जो खाद का काम देते हैं। हमारे कई अनुभवी पञ्जाबी किसानों का मत है कि कई साल तक नहरों द्वारा सिंचाई करने के पश्चात जब कुवों के पानी से सिंचाई की गई तो बहुत अधिक पैदावार हुई।

सिंचाई में यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि अधिक पानी के निकास के लिये नालियाँ अवश्य बना दी जावें।

गेहूँ की खेती में आबपाशी के प्रयोग

भारतवर्ष के जुदे २ मुल्कों में खेती विभाग के जरिये आब-पाशी के जो प्रयोग हुए उनका संक्षिप्त परन्तु मनोरञ्जक इतिहास हम नीचे देते हैं।

युक्त प्रदेश

युक्त प्रदेश के सीतापुर और अवध जिलों में गेहूँ की खेती में आबपाशी के जुदे २ प्रयोग किये गये। सीतापुर में पाव २ बीघे के ४ टुकडे लिये गये और उनमें तालाब के पानी से सिंचाई की गई। इस सिंचाई के प्रयोग में यह देखा गया कि जहाँ हर महीने सिंचाई की गई वहाँ की पैदावार सब से अच्छी हुई। इससे अधिक बार सिंचाई करने का नतीजा संतोषजनक नहीं हुआ। उससे पैदावार में कमी होगई। जमीन के उक्त टुकड़ों पर आबपाशी से जो नतीजे देखे गये वे नीचे की तालिका में दिये जाते हैं।

खेत का न०	पानी देने की अवधि	सिंचाई का न०	अनाज की पैदावार
१	प्रति सातवे दिन	१५	३७ सेर
२	प्रति १५ वे दिन	७	४० ,,
३	प्रति २८ वे दिन	४	५५ ,,
४	बिना सिंचाई के	०	१२ ,,

कानपुर के प्रयोग क्षेत्र में भी गेहूँ की खेती पर सिंचाई के बहुत से प्रयोग हुए। उन में भी नहर के पानी की अपेक्षा कुओं का पानी अधिक लाभदायक साबित हुआ है। इसका कारण यह है

जुताई	उपज
जुलाइ में जोता हुआ टुकड़ा	८१९ सेर
सितम्बर में जोता हुआ टुकड़ा	४९१ सेर

इस तालिका में दिये हुए हिसाब से मालूम होगा कि जिस जमीन में जल्दी जुताई की गई उसमें उस जमीन की अपेक्षा जिसमें देर से जुताई की गई लगभग दूनी पैदावार हुई।

पंजाब के प्रयोग

सन १९०४, ०५ ई० में पञ्जाब में भी गेहूँ की खेती पर सिंचाई के कई प्रयोग हुए। कई कृषि क्षेत्रों पर नहर के पानी के प्रयोग किये गये। हर जगह दो खेत लिये गये। पहले खेत में नहर के पानी द्वारा सिंचाई की गई और उस पर नहर के अधिकारियों की देख रेख रखी गई। दूसरे खेत में ७०×७० फुट की क्यारियाँ तैयार की गई और उसको एक किसान के सुपुर्द कर दिया गया। उन दोनों खेतों की जमीन समान गुणवाली थी और उनमें जुताई भी एक ही तरीके की गई थी। इनमें केवल यही प्रयोग करना था कि ज्यादा सिंचाई करने से क्या असर होता है। नहर के अधिकारियों ने अपने खेत की जमीन की योग्य समय पर सिंचाई की। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले खेत में अच्छी पैदावार हुई और दूसरे खेत में उससे बहुत कम।

सन् १९०५-०६ ई० में भी इस प्रकार के प्रयोग जारी रखे गये। इस वर्ष यह मालूम हुआ कि क्यारियां बना कर व जमीन के ढेलों को तोड़ कर सिंचाई करने से पानी की बचत होती है या नहीं। बिना ढेल की साफ व क्यारियोंवाली जमीन में इस वर्ष सिंचाई के लिये जितने पानी की आवश्यकता हुई उस से दूने पानी की आवश्यकता ढेलों वाली व बिना क्यारियों वाली जमीन में हुई। सन् १९०६-०७ ई० म भी इसी प्रकार के प्रयोग जारी रखे गये। इन प्रयोगों से मालूम हुआ कि किसान सिंचाई में बहुत ज्यादा पानी खर्च करते हैं। इससे बहुत सा जल निरर्थक बह जाता है। साथ ही वह खाद्य द्रव्य को भी बहा ले जाता है।

इसी अवधि में दूसरे खेतों में गेहूं की सिंचाई के बारे में अन्य प्रयोग किये गये। वहाँ यह देखा गया कि नई आबाद की हुई जमीन को पुरानी जमीनों की अपेक्षा ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है। पुरानी जमीनों में केवल तीन बार सिंचाई करने से गेहूं की फसल तैयार हो जाती है और जब पाच या उससे अधिक बार सिंचाई की जाती है तो उससे उपज कम होती है। इसी प्रकार यहाँ यह भी देखा गया कि बहुत गहरी सिंचाई करने से कोई फायदा नहीं होता। सन् १९०६-०७ ई० में और दूसरी सत्रह जगहों पर इसी प्रकार के प्रयोग शुरू किये गये पर बीच में जोर की बारिश व ओलों के गिर जाने से फसल खराब हो गई और इस प्रकार केवल ८ स्थानों को छोड़ कर बाकी के प्रयोग किसी काम में न आ सके।

इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानों के प्रयोगों से मालूम हुआ है कि बार बार व गहरी सिंचाई करने से गेहूं की फसल को ज्यादा फायदा नहीं पहुँचता। इतना ही नहीं इससे उपज भी कम बैठती है। इसके साथ ही पानी व मेहनत अकारथ जाते हैं। बहुत ज्यादा पानी की सिंचाइ करने से दूसरे खेतों को पानी नहीं मिल सकता और इस प्रकार पौधत्त के रस्ने में कमी आती है। इससे किसान व सरकार दोनों ही को नुकसान होता है। खास कर पञ्जाब में व युक्त प्रदेश में ज्यादा सिंचाई के कारण गेहूं का दाना खराब हो जाता है। उसकी बनावट एक सी नहीं रहती। इसी प्रकार सारे खेत में बराबर सिंचाई न करने से एक ही खेत के अनाज के दानों में फर्क पड़ जाता है।

गेहूँ का गेरुआ रोग

गेहूँ की फसल को जितने रोग होते हैं उनमें गेरुआ सब से अधिक भयङ्कर और हानिकारक है। एक वैज्ञानिक ने अनुमान लगाया है कि इस फसल को जितना गेरुआ नुक्सान पहुँचाता है, उतना अन्य सब रोग मिल कर भी नहीं पहुँचाते। यह बात केवल भारतवर्ष ही की नहीं है। अमेरिका के संयुक्त-प्रदेश, युरोप और आस्ट्रेलिया जैसे गेहूँ पैदा करने वाले देशों में भी गेरुए की समस्या भयङ्कर रूप से उपस्थित है।

इस रोग ने सारे संसार में गेहूँ की फसल को जितना नुकसान पहुँचाया है, वह चिन्तनीय है। सन् १९०१ को प्रशिया की

सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उक्त साल में वहाँ इस रोग के कारण गेहूँ की फसल में ३५,९३,७२९ पौंड का नुकसान हुआ। १ पौंड लगभग १५) रुपये के बराबर होता है। इस हिसाब से जर्मनी के केवल एक प्रदेश में एक वर्ष के अन्दर ५, ३९, ०६, ०७० का नुकसान हुआ। उक्त रिपोर्ट से यह भी मालूम होता है कि अगर गेहूँ के साथ साथ इस रोग से अन्य खाद्य पदार्थों की फसलों का जो नुकसान पहुँचा, वह भी इस में मिला दिया जावे तो वह ३०, ९४, २२, २०५) का हो जाता है। प्रुशिया के एक अक शास्त्री का कथन है कि वहाँ एक तृतीयांश फसल इस रोग के कारण नष्ट हो जाती थी। आस्ट्रेलिया एक मशहूर गेहूँ पैदा करनेवाला देश है। वहाँ इस रोग के कारण प्रति वर्ष ५००, ००, ०००) से लगा कर ४, ५०, ००,००० तक का नुकसान होता है। अमेरिका के संयुक्त प्रदेश के कृषि विभाग से मि० कार्लेटन लिखित Division of Vegetable Physiology and Pathology' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उसमें लिखा है कि अमेरिका में सब रोगों से मिला कर भी खाद्य पदार्थ की फसल को उतनी हानि नहीं पहुँचती है जितनी अकेले गरुआ रोग से पहुँचती है।

भारतवर्ष में इस रोग के द्वारा भयंकर विनाश होता है। गत वर्ष पूर्व हमारे इन्दौर राज्य के रामपुरा-भानपुरा जिलों में इसने गेहूँ की फसल को बरबाद कर दिया, जिस से किसानों के घरों में हाहाकार मच गया। उनके करे कराये परिश्रम पर पानी

फिर गया !! इस रोग से हिन्दुस्थान में कभी कभी एक वर्ष में ही सात आठ करोड़ रुपयों का नुकसान हो जाता है।

यह बीमारी भारतवर्ष के लिये कोई नई नहीं है। पहले भी यह बीमारी ऐसे ही भयङ्कर रूप में होती थी। ई० सन् १८३९ में मि० स्लीमन ने मध्य प्रदेश में इस बीमारी से होनेवाले विनाश का उल्लेख करते हुए लिखा था—"मैंने नर्मदा की घाटी के आस पास की २०० वर्गमील जमीन में गेरुआ रोग के कारण गेहूँ की फसल को भयङ्कर बरबादी के दृश्य देखे। एक चतुर्थांश फसल नष्ट होगई।" यही महाशय आगे चल कर फिर लिखते हैं— "गेरुए के कारण ई० सन् १८३७ में जितना बीज बोया गया, उतनी भी फसल नहीं हुई।

ई० सन् १८८२ में भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसी साल उसकी ओर से मि० केरयूथर की लिखी हुई एक पुस्तिका प्रकाशित कीगई और उसका चारों ओर प्रचार किया गया। जुदे २ प्रदेशों से गेहूँ के गेरुए के नमूने मँगवाये गये और वे परीक्षा के लिये इङ्गलैण्ड को 'रायल एग्रीकल्चरल सोसाइटी' (Royal Agricultural Society) के पास भेजे गये। उक्त जाच का परिणाम क्या निकला, यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।

इसके बाद गेरुए रोग की परीक्षा का कार्य बार्कलिक नामक वैज्ञानिक ने अपने हाथ में लिया। आपने गेरुए रोग तथा अन्य फसल के रोगों पर एक ग्रन्थ लिखा, जो ई० १८९५ में मि० बारलो द्वारा प्रकाशित किया गया। आपने अन्य कई बातों के साथ साथ

यह भी प्रकट किया कि जनवरी, फरवरी और मार्च की हवा का इस रोग पर बहुत प्रभाव गिरता है।

ई० सन् १८९८ में कनिङ्गहम और प्रेन नामक सज्जनों ने भारत सरकार के संकेत से इस रोग के अनुसन्धान का कार्य्य अपने हाथ में लिया। आपने भारतवर्ष के जुदे जुदे प्रदेशों में होने वाले गेहूए की बीमारियों की जाच की और उनके आपसी सम्बन्ध और विभेद पर प्रकाश डाला। इस अनुसन्धान से यह मालूम हुआ कि गेहूँ में लगने वाले गेरुए और घास पर लगने वाले गेरुए में बहुत अन्तर है।

ई० सन् १८९७ में महाशय प्रेन ने भारत सरकार के आदेशानुसार उन सब व्याख्यानों के साराश को प्रकाशित किया, जो आस्ट्रेलिया में ई० १८९० से लगा कर १८९७ तक गेहूँ के सम्बन्ध में होनेवाली पाँच कान्फ्रेंसों में दिये गये थे। इन कान्फ्रेंसों में संसार के बड़े बड़े कृषि-विद्या विशारद और वनस्पति-शास्त्रज्ञ पधारे थे। इन लोगों ने निरन्तर पाच वर्षों तक गेरुए रोग पर बहुत विचार किया था।

आस्ट्रेलिया देश में इस रोग के कारण इतनी जबर्दस्त हानियाँ हुई थीं कि वहाँ के किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय होगई। यही कारण था कि वहाँ की सरकार ने ई० सन् १८९० में अपने यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय औपनिवेशिक कान्फ्रेंस की योजना की थी। इसके बाद वहाँ पर इस विषय पर अनेकों कान्फ्रेंसें हुई।

उक्त कान्फ्रेंसों में संसार के बड़े २ कृषि-विद्या विशारदों ने इस

बात पर विचार किया कि गेहूँ की फसल को गेरुआ नामक प्लेग से किस प्रकार बचाया जाय। कई कृषि विद्या विशारदों ने इस विषय पर अपने मत प्रकट किये पर कोई रामबाण उपाय न दिखाई दिया। हाँ, इस बीमारी को रोकने के कुछ उपाय सोचे गये और उन्हें आस्ट्रेलिया देश में सफलता भी मिली। ई० सन् १८९१ में आस्ट्रेलिया के सिडनी नामक स्थान में उक्त कान्फ्रन्स का दूसरा अधिवेशन हुआ। उसमें फेरार नामक एक किसान ने कहा कि गेरुए से लड़ने का सबसे अच्छा और सरल उपाय यह है कि गेहूँ का कोई ऐसी जाति पैदा की जावे जिस पर गेरुए की बीमारी आक्रमण ही न कर सके। इसके अतिरिक्त गेहूँ की उस जाति में आटा अधिक पैदा करने की शक्ति हो। फेरार ने इस दिशा में अपने प्रयत्न शुरू किये। ई० सन् १८९९ में यह न्यू साउथ वेल्स के कृषि विभाग का मेम्बर होगया और उसी समय से वह आस्ट्रेलियन सरकार की सहायता से अन्वेषण करने लगा। उसके अन्वेषण का फल ई० सन १८९८ के एग्रीकल्चरल ग्याझेट आफ न्यू साउथ वेल्स (Agricultural Gazette of New South wales) में छपा है।

हिन्दुस्थान में भी गेहूँ की ऐसी जाति पैदा होने लगी, जिन पर गेरुआ आक्रमण न कर सके। इस विषय पर सब से पहले महाशय मेन का ध्यान गया। आप लिखते हैं —

'हिन्दुस्थान के गेहूँओं की कई जातियों में से कोई ऐसी जाति चुनी जावे जिस पर गेरुए का असर न हो या कम हो। यही एक

ऐसी पध्दति है जिससे गेरुए का मुकाबला करने की आशा की जा सकती है। यद्यपि यह बात सच है कि कोइ गेहूँ की जाति ऐसी नहीं है जो सोलहों आन इससे बची रहे, पर यह एक मानी हुई बात है कि कहीं २ किसी विशेष जमीन में कुछ ऐसी गेहूँ की जातियाँ पैदा होती हैं जो इस गेरुए रूपी भयङ्कर प्लग स बची रहती हैं। इस प्रकार की विभिन्न जाति के गेहुँओं के पौधों का संयोग करवा कर कोई ऐसी वर्णसंकर नई जाति निकाली जाय जिसम यह खासियत हो कि उसमें गेरुआ न लगे और आटा भी उसमें अच्छा निकले।"

ई० सन १८९६ से १९०९ तक भारत सरकार ने आस्ट्रेलिया के किसान फेरार के द्वारा तैयार किये हुए तथा कई ऐसे गेहुँओं के नमूने मँगवाये जो उक्त देश में गेरुए से रक्षित समझे जाते थे। ये गेहूँ कानपुर, नागपुर और पंजाब के कृषि-क्षेत्रों में बोये गये। अब इस प्रकार के गेहूँ पंजाब में कहीं कहीं बोये जाते हैं, पर भारत वर्ष में इन के आशाजनक अनुभव नहीं हुए। इनमें से ऐसी कोई भी जाति दिखाई न दी, जो गेरुए से पूरी तरह से बची रहे।

आस्ट्रेलिया में फेरार नामक किसान को इस सम्बन्ध में जो सफलता प्राप्त हुई उस पर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और उसने ई० सन १९०० में उत्तर पश्चिम प्रान्त के कृषि विभाग के डायरेक्टर को इस विषय का अध्ययन करने के लिये आस्ट्रेलिया भेजा। दूसरे वर्ष इन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। उन्होंने इस बात की सिफारिश की कि किसी मध्यवर्ती कृषि प्रयोग क्षेत्र

में गेहूँ का विभिन्न जातियों के संयोग के द्वारा कोई एसी जाति पैदा की जाये जो इस रोग से अपना बचाव कर सके। ई० १९०१ में कानपुर मे आस्ट्रेलिया के ढग पर गेहूँ की ऐसी जाति पैदा करने के प्रयाग शुरू हुए जाकि इस दुर्दमनीय रोग की शिकार न बन सके।

इस फ कुछ ही समय बाद भारत सरकार ने एक वनस्पति विद्या विशार्" की नियुक्ति की, जो विभिन्न पोधों पर लगने वाली भयंकर बीमारियों का अध्ययन करे। ई० सन् १९०३ में महाशय बटलर ने हिन्दुस्थान में होने वाले गेरुए रोग पर एक ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित किया। ई० सन १९०६ में इन्हीं महाशय बटर ने मि० हेमन की सहायता से गेरुए पर एक अन्य ग्रन्थ प्रकाशित किया। इसमें मि० मूरलेंड का एक नोट है, जिसमें उन्होंने विभिन्न प्रकार फी वायु और गेरुए के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। उक्त सज्जनों न इस सम्बन्ध पर जो नये अन्वेषण किये हैं उनकी विवेचना हम आगे चलकर करेंगे।

गेरुआ रोग की जातियाँ

महाशय बटलर और हेमन ने गेहूँ की फ़सल को होने वाले गरुआ रोग को तीन जातियों में बांटा है।

(१) काला गेरुआ।
(२) पीला गेरुआ।
(३) नारंगिया गेरुआ।

इनमें से काला और पीला गेरुआ प्राय सारे हिन्दुस्थान में देखा जाता है और नारंगिया गेरुआ खास कर बंगाल और संयुक्त प्रदेश में देखा गया है।

काला गेरुआ गेहूँ के पौधे के डंठल पर जोर से आक्रमण करता है। इससे डंठल पर काले दाग पड़ जाते हैं। पीला गेरुआ गेहूँ के पौधों के पत्तों पर भयंकरता से लगता है। इससे पत्तों पर पीले २ दाग और लकीरें पड़ जाती हैं। नारंगिया गेरुआ केवल पत्तों पर ही लगता है। इससे पत्तों पर नारंगी के रंग के समान धब्बे व लकीरें दिखाई देती हैं। सारांश यह है कि जब गेहूँ के पत्तों व डंठलों पर काले, पीले और नारंगी के रंग के धब्बे या लकीरें दिखाई दें तो जानना चाहिये कि इसमें गेरुआ लग गया है।

गेरुए का प्रचार—गेरुए की बीमारी किस प्रकार फैलती है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर वैज्ञानिकों में मत भेद है। कुछ लोगों का कथन है कि फसल के कट जाने पर भी गेरुए के जीवाणु शेष रह जाते हैं और अनुकूल परिस्थिति पाकर वे फिर ताकत पकड़ते हैं तथा दूसरे समय बोई जाने वाली गेहूँ की फसल पर आक्रमण करते हैं।

मि० मार्शल वार्ड अपने 'Annals of Botany' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि गेरुए के जीवाणु सूख जाने के बाद भी अनुकूल परिस्थिति पाकर अपनी गति विधि प्रकट करने लगते हैं। एक दूसरे वैज्ञानिक मि० गिब्सन ने अपने निजी अनुभव से यह

प्रकट किया है कि गेरुए के जीवाणु ८४ दिन तक केवल जीवित ही नहीं रखे जा सकते हैं, वरन् उस समय तक उनकी उत्पादन शक्ति भी कायम रहती है। मि० वर्कने का कथन है कि गेरुए के जीवाणु में दो माह से लगा कर ८ माह तक उत्पादन शक्ति बनी रहती है। पर अभी तक यह प्रश्न बाकी है कि क्या एक साल का गेरुआ दूसरे साल की फसल को नुकसान पहुँचा सकता है? विज्ञान की भावी अन्वेषणाएँ इस विषय पर प्रकाश डालेंगी।

कुछ कृषि-विद्या विशारदों का यह मत है कि गेरुए के जीवाणु बहुत ही हलके और सूक्ष्म होते हैं। वे हवा के झोंकों के साथ उड़ कर इधर उधर फैल जाते हैं। मान लीजिये कि एक खेत में गेरुआ लगा। वायु उस खेत के जीवाणुओं में से बहुतों को उड़ा कर इधर उधर फैला देगी और इससे दूसरे खेतों में भी उसका असर पहुँचेगा। कनेगान नामक एक जर्मन विद्वान ने लिखा है कि गेरुए के जीवाणु वायु के साथ उड़ कर बहुत दूर दूर चले जाते हैं और फसल पर अपना विनाशकारी और जहरीला असर डालते हैं।

कुछ कृषि विद्या विशारदों का मत है कि गरम हवा में गेहूँ पैदा करनेवाले खेतों के आस पास के पौधों पर ये जीवाणु परवरिश पाते हैं और जब गेहूँ की फसल लगती है तब ये उन पर आक्रमण कर देते हैं। पर इस सम्बन्ध में भी अभी कोई निश्चित वैज्ञानिक मत प्रकट नहीं हुआ है।

महाशय एरिक्सन का कथन है कि गेहूँ के जिस प्रकार गेरुआ

लग जाता है उस खेत के बीज अगर दूसरे साल बोये जावें तो उन पर भी गेरुए का असर होता है। अति सूक्ष्म रूप में गेरुए के जीवाणु उन पर रहते हैं और अनुकूल समय पर शक्तिशाली होकर व फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। पर इस मत का समर्थन भी अभी तक वैज्ञानिक प्रयोगों से नहीं होसका है।

गेरुआ पर आबहवा का प्रभाव।

कृषि-विद्या विशारदों ने इस विषय पर भी अन्वेषणाएँ की हैं कि जुदी २ आबहवा का गेरुआ पर क्या प्रभाव गिरता है। बहुत ग्वोज पड़ताल के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि जनवरी और फरवरी में बहुत और निरन्तर वर्षा का होना, बरसाती हवा का चलना, वायु मंडल का बादलों से घिरा रहना इत्यादि बातें गेरुए के फलने फूलने में सहायक होती हैं। इस प्रकारके वायु मण्डल में गेरुआ रोग बड़ी तेजी के साथ फैलता है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से भी यह रोग होता है।

गेरुए के रोकने के उपाय।

लम्बे अनुभव के बाद कृषि-विद्या-विशारदों ने यह मत स्थिर किया है कि गेरुए को रोकने का सब से अच्छा उपाय यह है कि गेहूँ की ऐसी जाति बोई जावे, जिस पर यह रोग असर न कर सके।

निरन्तर प्रयोग (Experiments) करने के बाद पूसा के कृषि प्रयोग क्षेत्र में गेहूँ की एक ऐसी जाति उत्पन्न की गई है, जिस पर इस रोग का बिलकुल असर नहीं होता तथा जिसकी पैदावार अन्य गेहूँ की जातियों की अपेक्षा बहुत ही सरल ढंग से हो सकती है। इस जाति के गेहूँ का नाम पूसा नं० ४ है। इसके अतिरिक्त मूड़िया, पिस्सी, बन्सी, नागपुर का बत्ती और बंगाल के मासी नामक गेहूँ की जातियों पर भी इसका कम असर होता है। मि० अल्बर्ट हावर्ड ने तो सब से अधिक जोर इसी बात पर दिया है कि गेरुए को रोकने के लिये इसी प्रकार की जाति बोना चाहिये, जिस पर यह रोग अपना असर ही न जमा सके।

अब हम यहाँ इस रोग से फसल को बचाने की कुछ तरकीबें लिखते हैं। ये तरकीबें भारत सरकार की तरफ से नियुक्त किये हुए कृषि-विद्या विशारद मि० बटन और मि० केनिङ्गहेम ने निकाली थीं।

(१) खेत जब सूखा हो, तब बीज बोने से बीमारी की रुकावट बहुत कुछ सम्भव है।

(२) गेहूँ के खेत में दूसरे प्रकार की जिन्सें उलट पलट कर बोते रहने से भी यह बीमारी नहीं होती।

(३) सब से बड़ी बात बीज का छाँट कर बोने की है। इस समय यह देख लेना चाहिये कि कोई बीज का दाना इस बीमारी से लगे हुए बीज का तो नहीं है।

(४) नये नये प्रकार के बीज बोते रहने से भी यह बीमारी दूर हो जाती है।

(५) एक छटाक तूतीया लम्र भली भांति कपड़े में छान लेना चाहिये और दो सेर पानी मिला कर दूध की भांति पिचकारी द्वारा छिड़कना चाहिये।

(६) पौधों पर प्रातःकाल, जब कि ओस गिरी हो, कडों की राख छांटना चाहिये।

कुंडवा (SMUT)

कुंडवा नामक रोग से भी गेहूँ की फ़सल को नुक़सान पहुँचता है। इस रोग में गेहूँ की बालें ऊपर से तो अच्छी दीखती हैं, परन्तु उनके भीतर बीज की जगह काला चूरा भर जाता है। इस रोग का जिन २ बालों पर असर हुआ हो उन सबको जला देना चाहिये या अलग कर देना चाहिये, जिससे यह रोग बढ़ने न पावे। प्राय देखा गया है कि कई किसान इन बालों को अपने गाय बैलों को खिला देते हैं, पर उनकी यह बड़ी भूल है। क्योंकि इस प्रकार कुंडवा लगे हुए धान गोबर के साथ बाहर निकल आते हैं और उस गोबर को खाद के उपयोग में लाने पर सारे खेत में फैल जाते हैं। इस प्रकार जब दूसरी वक्त कोई फसल बोई गई तो उसमें भी यह रोग फैल जाता है।

इस रोग के बचाव के लिये सबसे सरल तरकीब यह है कि बोने के पहिले बीज को नीला थूथा के पानी में डुबो लिया जावे।

दीमक ।

दीमक गेहूँ के अँकुर निकलने के समय फसल को लग जाता है। इससे पौधे की बाढ मारी जाती है। इस कीड़े के लग जाने का प्रमुख कारण पानी की कमी है। जब पौधे के अँकुर निकलने लगते हैं, तब इन कीड़ो का आक्रमण होता है। पर यदि पौधे काफी बड़े हो गये हों तो इन स कोई नुकसान नहीं होता। इन कीडों से पौधों की जडों को उतना नुकसान नहीं होता, जितना कि बीज व पौधे के अँकुर के बीच के भाग को होता है। इस रोग से फसल को बचाने के लिये बीज बाते समय खेत में काफी आल होना चाहिये। प्राय यह रोग पानी की कमी के कारण होता है। इसलिये इस रोग के होते ही अच्छी सिंचाई कर लेना चाहिये। यदि इस समय माहुटे का पानी गिर गया तो पौधे की बड़ी जल्दी वृद्धि होगी। जहाँ सिंचाइ की व्यवस्था न हो तथा माहुटे क पानी की भी सम्भावना न हो, वहाँ निम्नलिखित उपाय काम में लाना चाहिये।

(१) यदि बन सके तो दीमक का छत्ता ढूढना चाहिये, और उसमें से नर मादो अलग निकाल देना चाहिये। ये नर मादी सब दीमकों से बडे होते हैं। यदि ये छत्ते से अलग कर लिये गये तो सब दीमक खत्म हो जाते हैं।

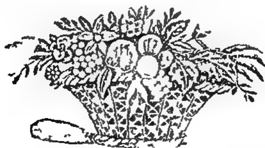
(२) गरम पानी से भी इनका निवारण होता है।

(३) बार बार निंदाई करना चाहिये जिससे दीमक मिट जावें।

गेहूं इकट्ठा करने के लिये सूचनाएँ ।

अकसर देखा जाता है कि किसान घुन या सुरसुरिया लगने के डर से अपना माल बहुत ही जल्दी सस्ते से सस्ते भाव में बेच देते हैं। उन्हें यह डर रहता है कि यदि अधिक दिना तक माल रखा रहा तो उसकी कीमत और भी उतर जायगी। इस डर के मारे वे प्रतिवर्ष बहुत सा नुकसान उठाते हैं। वास्तव में उनका डर ठीक भी है। पर यदि वे गेहूँ को इकट्ठा करने की तरकीबों पर अमल करने लग जावें तो सम्भव है कि उनका भय दफा होजावेगा। प्राय देखा गया है कि फसल पूरी तौर से पकने के पहले ही काट लीजाती है, जिससे गेहूँ अधिक दिनों तक अच्छी हालत में नहीं रह सकते। अतएव गेहूँ की फसल को पूरी तरह पक जाने पर काटना चाहिये। इसके बाद अनाज को कोठों, बोरियों या बखारियों में भरते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उनमें शील अथवा सड़न तो नहीं है। इसके अतिरिक्त जब गेहूँ भर जावें, तो मकान अथवा बरतन साफ कर लेना चाहिये और जो कुछ कूड़ा करकट निकले उसे दूर फिंकवा देना चाहिये। कूड़ा करकट साफ न करने के कारण गेहूँ में "घुन" लग जाता है और बहुत से दानों में वह छेद कर देता है। खास कर जिन कोठों में हर साल अनाज भरा जाता है, उनमें तो घुन अवश्य ही अपना घर बना लेता है। अतएव अनाज भरने के पहले खाली कोठा या बखारी में कुछ छिछले बरतनों में थोड़ा २ कारबन बाय सलफाइड

(Carbon by Sulphide) रख देना चाहिये और बाद में उसे चारों ओर से अच्छी तरह २४ घंटे तक बन्द रखना चाहिये। उसके बाद फिर ३, ४ घंटे तक उसे खुला रखना चाहिये, जिससे पहले के सब 'घुन" नष्ट होजावें। कोठे को खोलते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि कोठे की विषैली हवा खोलने वाले के नाक में प्रवेश न कर जाय। यदि अनाज भरने के बाद यह मालूम हो कि गेहूँ में घुन लग गई है तो अनाज के ऊपर छिछले (कम गहरा) बरतनों में प्रति टन पीछे आधा सेर कारबन बाय सल-फाइड भर कर रख देना चाहिये। इसके बाद उस कोठे को चारों ओर से दो रोज तक इस प्रकार बन्द रखना चाहिये कि उसकी हवा बाहर न निकलने पावे। ऐसा करने से उस कोठे के सब कीड़े मरजायेंगे और अनाज को किसी प्रकार की हानि न पहुँचेगी।



कपास की खेती

कपास हिन्दुस्थान की सब से महत्व पूर्ण फसल है। अफीम की खेती बन्द होने के बाद अगर कोई ऐसी फ़सल है, जिस से किसानों को सब से ज्यादा पैसा मिलता है तो वह कपास ही है। इस वक्त हिन्दुस्थान में दो करोड़ एकड़ भूमि में कपास बोया जाता है। अलग अलग प्रान्तों के कपास की खेती का ब्यौरा इस तरह है।

बम्बई प्रान्त	६०००,०००	एकड़
मध्य प्रान्त	१७००,०००	,,
बरार	३०००,०००	,,
मद्रास प्रान्त	१५००,०००	,,
पंजाब	१५००,०००	,,
युक्त-प्रान्त	१२५०,०००	,,
बर्मा	२००,०००	,,
हैदराबाद (दक्षिण	३४००,०००	
अजमेर मेरवाड़ा)	४०,०००	
मध्य-भारत	१०००,०००	
राजपुताना	४५० ०००	

यह तो वर्तमान समय की खेती के अङ्क हैं। पर कपास की खेती की उन्नति का अब भी यहा सुविशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है। कपास की खेती से सम्बन्ध रखनेवाली विभिन्न दिशाओं में बहुत कुछ काम करने की जरूरत है। यह एक ऐसी फसल है कि अगर इसकी सर्वाङ्गमुखी उन्नति की जाय तो भारत की आर्थिक स्थिति पर बडा ही अच्छा प्रभाव पड सकता है। गरीब किसान हरे भरे हो सकते हैं। कृषि और औद्योगिक संसार में नई चमक-दमक आ सकती है। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नया अध्याय शुरू हो सकता है।

हिन्दुस्थान के किसान अपढ हैं। वे पुरान तरीकों से खेती करते हैं। विज्ञान की रोशनी उन तक नहीं पहुँच पाई है। उनका दृष्टि कोण बहुत सकीर्ण है। वे नहीं जानते कि आधुनिक विज्ञान खेती में कितने विस्मयकारक परिवर्तन कर रहा है। इससे वे अपनी उपज को नहीं बढा पाये हैं। युरोप और अमेरिका के किसानों न बडी तरक्की की है। यहा के किसान एक एकड में जितनी फ़सल पैदा करते हैं, उससे वे तीगुनी चौगुनी करते हैं। कभी कभी इससे भी ज्यादा। आप कपास ही की फसल को ले लीजिये। दूसरे देशों की तुलना में यहां बहुत कम रुई पैदा होती है। यदि हिसाब लगा कर देखा जाय तो यहा रुई की औसत प्रति एकड ८२ पौंड (लगभग १ मन) पडती है। यह अमेरिका की एक तिहाइ है। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि अमेरिका इससे तीगुना रुई पैदा करता है।

यह तो हुई पैदावार की बात। इसके अलावा अमेरिका, मिश्र आदि देशों में जितनी बढ़िया रुई होती है, उसके मुकाबले में हिन्दुस्तान की रुई बहुत ही घटिया है। हिन्दुस्तान में अगर रुई की खेती की तरक्की करना है तो केवल उसका रुपा बढ़ाने से काम नहीं चलगा। पर उसके दूसरे गुणों को भी बढ़ाना होगा। रेशे (yint) की लम्बाइ, मजबूती तथा उसका एकसा बारीक व अच्छे रग का होना आदि गुण रुई में प्रधान रूप से देखे जाते हैं

इसके सिवाय और भी बातें हैं जिनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। आप मालवा को ले लीजिये। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रान्त रुई प्रधान है। यहा के कपास की खेती में कई प्रकार के सुधारों की जरूरत है। वैज्ञानिक खोज द्वारा ऐसे तरीके निकाले जाने चाहिये, जिससे प्रति एकड रुई की पैदावार भी बढ़े और साथ ही में वह ऊँचे दर्जे की भी हो। उसमें वे सब गुण हों, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसके सिवा मि० हॉवर्ड के शब्दों में मालवा में सब से बड़ी आवश्यकता इस प्रकार के कपास की है जो जल्दी तैयार हो जावे और जाड़ा शुरू होने के पहले जिसकी चुनाई शुरू हो जाय। इस प्रकार का कपास न होने से किसानों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। दुर्भाग्यवश अगर माहूटे का पानी गिर गया तो उनकी खेती चौपट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त विविध बीमारियों से भी कपास की फसल

का कई वक्त भारी नुकसान पहुँचता है। अतएव हमें कपास की खेती के सुधार का विचार करते समय निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(१) इस प्रकार के कपास की जाति ढूँढ निकालना या पैदा करना चाहिये, जो अधिक से अधिक तादाद में पैदा हो और जो गुण में भी सब से बढ़िया हो।

(२) ऐसा कपास होना चाहिये जिस में अधिक से अधिक रुई निकले और जिस के रेशे की लम्बाई मजबूती और मुलायमपन अधिक हो।

(३) जिस में विविध प्रकार की बीमारियों का मुकाबला करने की ताकत हो।

(४) जो जल्दी पकनेवाली हो।

(५) इसके लिये ऐसी बातें ढूढ निकाली जावें, जिनके द्वारा फसल के जल्दी तैयार होने में सहायता मिले।

फसल का सुधार।

युरप और अमेरिका के बड़े बड़े विज्ञानविदों के दिमाग अपने अपने देशों की फसलों को सुधारने की ओर लग रहे हैं। महायुद्ध के बाद तो पाश्चात्य देश खेती की तरक्की में बहुत ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे हैं। वहाँ के बड़े बड़े मुत्सद्दियों का

यह ख्याल है कि भविष्य के अन्तर्राष्ट्रीय कलह में वही राष्ट्र अधिक दिन तक टिक सकेगा जो अपने भोजन की सामग्री को इतनी तादाद में पैदा कर सकेगा कि इसके लिये उसे दूसरे राष्ट्रों का मुँह न देखना पड़े। यही कारण है कि इस वक्त खेती की तरक्की में भी युरोप की राजनीति ने विज्ञान का बड़ा साथ दिया है। अमेरिका के येल विश्व विद्यालय के प्रो० नि० जट महाशय का कथन है कि "विज्ञान के संयोग से कृषि उन्नति के इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हो रहा है।" कहने का मतलब यह है कि भारतवर्ष को भी उन्नति की इस घुड़दौड़ में आगे बढ़ने की कोशिश करना चाहिये। उसे संसार में नये से नया प्रकाश ग्रहण करने में उत्सुक रहना चाहिये। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। उसकी आर्थिक उन्नति का दारोमदार कृषि पर है। अब पुराने गयेगुजरे तरीकों से काम नहीं चल सकता। हम बीसवीं सदी में रह रहे हैं। हमें अपनी खेती की उन्नति में नवीन से नवीन वैज्ञानिक पद्धतियों से लाभ उठाना चाहिये। हम यहाँ रुई की खेती के सुधार से खास मतलब है। हम पहले यह चुके हैं कि अमेरिका, मिश्र आदि देशों की रुई भारतवर्ष से बहुत ज्यादा बढ़िया होती है। हमें यह देखना चाहिये कि उन देशों ने रुई की फसल के सुधार के लिये किन पद्धतियों से काम लिया। पाश्चात्य देशों की रुई का इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि उन देशों ने फसल की जाति को सुधारने के लिये खास तौर से निम्न लिखित पद्धतियों पर ज्यादा जोर दिया।

(१) 'चुनाव पद्धति' (Mass Selection)

वर्ग 'शङ्कर पद्धति' (Hybridization)

अब हम इन दोनों पद्धतियों पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

(१) वाशिंगटन विश्वविद्यालय के कृषिशास्त्र के आचार्य प्रो० वेबर महोदय लिखते हैं "मनुष्यों की तरह पौधों में भी अपनी अपनी खासियत होती है। उनमें भी व्यक्तित्व है। यह खासियत उनकी सन्तान पौधा (Progeny) पर भी उतर आती है। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि अगर किसी खास पौधे में कोई खास विशेषता है तो वह विशेषता थोड़े बहुत अंशों में उस पौधे के बीजों से उत्पन्न होने वाली फ़सल में भी आयगी। कृषि विद्या विशारदों ने देखा है कि एक ही खेत में कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो अधिक हृष्ट पुष्ट निरोग होने के सिवाय जिनमें बीमारियों से मुकाबला करने की भी अधिक शक्ति होती है। इनमें और भी कई विशेषताएँ देखी जाती हैं। कुशल कृषिशास्त्री खेतों में जाते हैं और वे उसमें सबसे अच्छे पौधों को चुनते हैं। एक एकड़ ज़मीन में सबसे अच्छे भाई ५० रुई के पौधों को चुन लेते हैं और उन पर नम्बर लगा लेते हैं। फिर दुबारा उन पचास पौधों में से भी ज्यादा अच्छे देखकर २५ पौधे चुन लिये जाते हैं। फिर वे इन्हें तोड़कर ले आते हैं और उनमें से कपास निकाल लेते हैं। अलग अलग पौधों की रुई अलग अलग रखी जाती है। मौसम के अन्त में उस रुई की परीक्षा की जाती है और वह

बोली जाती है। जिन पौधों की रुई सब बातों में सबसे अच्छी निकलती है, उसी के बीज दुबारा फसल में बोये जाते हैं। इन बीजों की फसल से फिर ऊपर की पद्धति के मुताबिक सबसे अच्छे पौधे चुनेजाते हैं और फिर उसी तरह अच्छे से अच्छे चुने हुए पौधों के बीज दूसरी फसल में बोये जाते हैं। फिर भी यही क्रिया की जाती है। इस तरह कपास की एक श्रेष्ठ जाति पैदा की जाती है।"

"इसके अतिरिक्त कपास की जाति भी ऐसी चुनना चाहिये जिसमें अधिक से अधिक उत्पादक शक्ति हो जिसमें रुई का हिस्सा अधिक से अधिक हो जिसके रेशे में मुलायमपन और लम्बाई अधिक पाई जावे, जिसमें रोगों का सामना करने की काफी ताकत हो। पर इस जाति के पौधों में भी चुनाव की पद्धति द्वारा और भी श्रेष्ठता लाने का यत्न करना चाहिये।

बस पौधों के चुनाव की उपरोक्त क्रिया को चुनाव पद्धति (Selection) कहते हैं।

वर्णसंकर पद्धति।

अर्थात्

दोगली जाति पैदा करने की रीति।

फसल के सुधार के लिये उसे उन्नत करने के लिये-जिन दो पद्धतियों की आवश्यकता है—उसमें से एक के विषय में ऊपर

लिखा जा चुका है। अब वर्णसङ्कर पद्धति पर कुछ पंक्तियाँ लिखना आवश्यक है। पाठक जानते हैं कि मानवी संसार की बहुत सी क्रियाएँ वानस्पतिक संसार में भी होती हैं। संसार प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य डॉक्टर जगदीशचन्द्र बोस ने तो इस पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला है। मानवी तथा पशु संसार की तरह वनस्पति संसार में भी संयोग क्रिया होती है। माता पिता के खून का —उनके अच्छे बुरे गुणों का—जिस प्रकार उनकी सन्तानों पर असर होता है ठीक यही बात पौधों में भी होती है।

मि० हॉवर्ड के मतानुसार चुनाव पद्धति से जब अन्तिम सीमा की उन्नति होजाती है अर्थात् जब उस पद्धति से फसलों की उन्नति उस सीमा तक आकर पहुँच जाती है कि जिसके आगे बढ़ना सम्भव नहीं होता तब उन्नत की हुई दो जातियों के पौधों के संयोग से नई प्रकार की फसल पैदा करने के प्रयोग काम में लाये जाते हैं। इससे दोनों जातियों के पौधों की खासियत या विशेषताएँ उस नई उत्पन्न होने वाली फसल में आजाती है। पर अभी यह विज्ञान बाल्यावस्था में है। हर आदमी इस काम को नहीं कर सकता। इस लिये भारत सरकार द्वारा नियुक्त कृषि कमिशन ने भी इस विषय पर लिखा है —

"दो नसलो जाति तैयार करने की रीति चुनाव की रीति से बहुत धीमी है। उसमें वैज्ञानिक अनुभव और लगन की विशेष आवश्यकता है। हमारा खयाल है कि पौधों की उन्नति करने वाले कार्यकर्त्ता जब तक मुमकिन हो, तब तक चुनाव की प्रथा ही को

काम में लाते रहेंगे तो अच्छा होगा। दो नमला जाति पैदा कर कृषि की उन्नति करने का कार्य केवल उन्हीं अधिकारियों का हाथ में लेना चाहिए जिन्होंने इस विषय की पूरी तालीम ली हो और जिन्हें हिन्दुस्थान की फसलों का अच्छा तजुर्बा हो

कपास के लिये भूमि।

कृषि विद्या विशारदों का कथन है कि कपास की खेती के लिये पोली और ऐसी जमीन की जरूरत है जिस में हवा का प्रवेश बराबर होता रहे। पूसा में यन्त्रों द्वारा परीक्षा करने से यह ज्ञात हुआ कि कपास की जड़ों में हवा की कमी होने से उसकी बाढ़ रुक जाती है, पर भूमि का पोली कर देने से उसकी अधिक बाढ़ होने लगता है। यह बात वैज्ञानिकों ने अपने निज अनुभव के द्वारा निश्चित कर ली है कि भूमि में यथोचित वायु प्रवेश के होने से कपास की पैदावार पर बहुत ही अच्छा असर गिरता है। इसके प्रत्यक्ष अनुभव हुए हैं। मध्य प्रान्त के कृषि विभाग के पूर्व डायरेक्टर क्लाउस्टन महाशय ने उक्त प्रान्त के छनागढ जिले के चन्द्रपुरी स्थान में इस सम्बन्ध में जो जाँचें की हैं वे बड़े महत्व की हैं। इस जिले में वर्षा बहुत होती है और सिंचाई का प्रबन्ध भी अच्छा है। पर यहाँ उक्त दोनों जमीनों में पानी के शोषण की शक्ति अलग अलग है। भूरजमीन ककरीली (लैटराइटिक) तथा अधिक पोली होती है। इसलिये इसमें पानी शीघ्र समा जाता है और बचा हुआ पानी बह कर निकल जाता है। इसके विपरीत

काली भूमि ठोस होती है। वह पानी के निकास को रोकती है। चन्द्रपुरी में जब इन दोनों प्रकार की जमीनों में गोजियम नामक कपास बोया गया तब यह देखा गया कि भट्ट जमीन में पैदा होने वाला कपास रेशे की लम्बाई और अन्य गुणों की दृष्टि से ज्यादा अच्छा रहा। वहाँ के व्यापारियों ने इस ऊँचे दर्जे का बतलाया। इसका कारण यह है कि भट्ट जमीन में जहाँ वायु प्रवेश को अधिक गुंजाईश है, वहाँ उसमें पानी का निकास भी अच्छा होता है। इसमें कपास की जड़ों को तरक्की करने का अच्छा मौका मिलता है। यद्यपि यह बात सच है कि रासायनिक दृष्टि से काली जमीन में कपास के लिये अधिक भोजन सामग्री रहा हुई है, पर उसमें वायु प्रवेश की ठीक गुंजाइश न होने से पौधों को जीवनी शक्ति का उतना अधिक बल नहीं मिलता। बम्बई के कृषि विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर डॉक्टर मन और उनके अधीनस्थ कर्मचारियों ने सूरत की प्रयोगशाला में जाँचकर यह मालूम किया कि कम हवादार जमीन में कपास की पैदायश कम होती है। मतलब यह है कि अभी तक की वैज्ञानिक खोजों से यह बात अच्छी तरह मालूम हुई है कि भूमि में वायु का अधिक प्रवेश होने से जहाँ कपास की पैदायश में बढ़ती होती है वहाँ उसका रेशा भी अच्छा होता है।

मालवा में अक्सर काली भूमि में कपास बोया जाता है। रासायनिक दृष्टि से काली भूमि कपास की पैदायश के लिये बहुत अच्छी होती है। पर उसमें एक कसर यह है कि उसमें वायु प्रवेश

ठीक नहीं होता। इसलिये कपास की खेती को अधिक सफल करने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें गहरी जुताई कर मिट्टी को खूब मुलायम कर दी जाय और खेत को हलकासा ढाल देकर पानी के निकास का ठीक प्रबन्ध कर दिया जाय। इससे भूमि में वायु प्रवेश होने लगेगा और कपास की जड़ों को उन्नति करने का अच्छा मौका मिलेगा। इतना होने पर काली भूमि में कपास की जितनी बढ़िया पैदावार होगी, उतनी अन्य भूमि में नहीं हो सकती।

नागपुर कॉलेज के प्रिन्सिपाल मि० जे० ए० एलन महाशय लिखते हैं—जिन खेतों में कपास अच्छा दीखता है, उनके पृष्ठ भाग के नीचे की मिट्टी की परीक्षा करने से मालूम होगा कि उनमें पानी के निकास की स्वाभाविक शक्ति रहती है। अच्छी निकास वाली जमीन में से फिजूल पानी निकल जाता है और फसल जल्दी तैयार हो जाती है।"

मालवा की काली भूमि

मि० हॉवर्ड का कथन है कि मालवा की गहरी काली भूमि में कपास की उन्नति का सारा दारोमदार समय की अवधि पर है। यदि शुरू में कपास का पौधा अच्छी तरह बढ़ता गया और उसके फूल जल्दी निकल आये तो फसल बहुत अच्छी होगी, उम्दा जाति का कपास तैयार होगा और भारी बरसात से कपास के पौधे को नुकसान न होगा। यदि बीज के लिये ऐसी जाति चुन ली गई जो देर से पकने वाली हो तथा बीज बोने के बाद

कोई ऐसी रुकावटें पेश हो गई जिन से पौधे के बढ़ने में देरी लगे, तो उस हालत में फसल खराब होजाती है, कम आती है और पाले तथा ठंढ से उसे बहुत सा नुकसान पहुँचता है। अतएव अच्छा बीज बोने के बाद नीचे लिखी हुई दो बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) जुलाई व अगस्त मास में नालियों के द्वारा फालतू पानी निकालने की व्यवस्था करना।

(२) फसल को शुरू में काफी मात्रा में नाईट्रोजन देने का प्रबन्ध करना जिससे पौधों की बाढ़ जल्दी हो।

पहली व्यवस्था के लिये नालियों द्वारा फालतू पानी निकाल देना चाहिये। इसके लिये जमीन में हलका सा ढाल दे देना चाहिये, जिस से अनेकों नालियों द्वारा खेत को कई भागों में विभाजित न करने पड़े। रही फसल को नाइट्रोजन देने की बात सो इसके सम्बन्ध में हम "खाद" के अध्याय में चर्चा करेंगे।

खाद

हम पहले कह चुके हैं कि कपास की फसल को सब से अधिक आवश्यकता नाईट्रोजन की है। यह इसका मुख्य खाद्य पदार्थ है। इसकी पूर्ति कम्पोस्ट खाद के डालने से हो सकती है। इन्दौर के प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट में कपास की फसल को यही खाद दिया जाता है और उसमें बड़ी अच्छी सफलता हुई है। खाद निम्न लिखित विधि से बना लेना चाहिये।

पौधों के डंठल, हरा खाद, घासपात, कपास के डंठल, कूड़ा कचरा साठे के पत्ते व छिलके आदि चीजों को इकट्ठा कर 'चाईनीज कम्पोस्ट' खाद तैयार किया जावे। यह खाद तैयार करने की यह तरकीब है कि पहले इन सब चीजों को सुखा लेना चाहिये। बाद में उनके बारीक २ टुकड़े कर लेना चाहिये। इसके बाद उनको ढोरों के नीचे बिछौने के तौर पर बिछा देना चाहिये। जब ढोरों के मूत्र व गोबर से ये सब चीजें गीली हो जावें तो उन्हें निकाल कर खाद के गड्ढों में भर देना चाहिये। इन चीजों में जब ढोरों का मूत्र व गोबर पड़ता है तब उनमें नाइट्रोजन तैयार होता है। इस खाद में थोड़ी सी राख भी मिला देना चाहिये, जिस से इस में जो एक प्रकार का तीक्ष्णपन पैदा होता है, वह नष्ट हो जाय। इस प्रकार का खाद 'नैत्रजन' की समस्या को हल कर देता है। इसके अलावा सन का खाद व 'करज' का खाद भी देना चाहिये, जिससे जमीन के चिकने ढेले नरम हो जावें।

कपास की फसल के लिये अरण्डी की खली का उपयोग

जलगाँव कृषि क्षेत्र के प्रयोग

कपास खेती पर जलगाँव प्रयोग क्षेत्र पर अरण्डी की खली के प्रयोग शुरू किये गये। अरण्डी के बीजों में से तेल निकालने

के बाद जो भूसा बच जाता है, उसे खली कहते हैं। इसको नीचे बतलाये हुए तीन कारणों से कपास की फसल के लिये उपयोगी समझा गया—

१ यह थोड़ी वर्षा में भी सहज ही घुल जाती है और कपास के पौधे को जल्दी ही खाद्य सामग्री देती है।

२ इसको देने की तरकीब बड़ी सरल है।

३ यह सहज ही मिल सकती है।

ई० स० १९१८—१९ व १९१९—२० में इसका जलगाव के कृषि क्षेत्र पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में फी एकड़ ४०० पौंड खली का खाद दिया गया। इससे नीचे लिखे हुए आश्चर्य जनक नतीजे निकले।

ऋतु व वर्षा का परिमाण	खाद के प्रयोग	कपास की पैदावार फी एकड़ पौंडों में	खाद का मूल्य	फी एकड़ पैदावार का मूल्य	खाद की क़ीमत मुजरा देकर बचा हुआ फ़ायदा
ई० स० १९१८ १९	बिना खाद के	२४१		७३ १३-०	१८-१ ०
वर्षा का प्रमाण	१५ गाड़ी गोबर का खाद	६५९	३७-८ ०	१९६ १-०	१०१-९-०
(इंचों में) १५-१४	४०० पौंड अरंडी की खली	७६३	१२ ८-०	२७७-५ ०	१२६-१३-०
ई० स० १९१९ २०	बिना खाद के	०	०	०	०
वर्षा का परिमाण	१५ गाड़ी गोबर का खाद	५७८	५२-८ ०	१३२ १५ ०	३३ ३ ०
	४०० पौंड अरंडी की खली	५१७	१५-० ०	११८ १४ ०	५६ ६-

ऊपर बतलाये हुए दोनों नतीजे ऐसे वर्षों के हैं जिनमें वर्षा का प्रमाण बहुत कम या बहुत अधिक था। अतएव इनसे पता लग सकता है कि कम व अधिक बरसात के समय भी इस खाद का देना उपयोगी होता है। इस वर्षा के पश्चात् भी जलगांव में

अरण्डी की खली दिये जाने वाले खेतों के कपास की पैदावार के चार वर्षों की औसत ५२२ पौंड रही। जिन खेतों को गोबर का खाद दिया गया था, उनकी चार वर्षों की पैदावार की औसत ३८६ पौंड रही थी। इन प्रयोगों के अतिरिक्त कई दूसरे स्थानों पर इस खली की उपयोगिता के बारे में बहुत प्रयोग किये गये, जिन से किसानों को विश्वास हो गया कि वास्तव में यह बहुत उपयोगी खाद है। पिछले तीन वर्षों में जो पैदावार हुई है, उससे भी साफ तौर पर प्रगट होता है कि खली का खाद देने से पैदावार में फी एकड़ २७० पौंड बढ़ती हुई।

खाद देने का तरीका

इसको देने का सब से सीधा और कम खर्च का तरीका यह है कि पहले इसकी बुकनी बना ली जावे और बाद में कपास के बीज बोने के समय नली के जरीये डाल दिया जावे। खानदेश में कपास का बीज नली के पीछे दो नलिया लगा कर बोया जाता है। इसके लिये दो औरतों की आवश्यकता रहती है। यदि इस समय खली भी डालना हो तो दो औरतों की और आवश्यकता होगी। नली के जरिये खली डालने से एक फायदा यह होता है कि जिस लकीर में बीज पड़ता है उसी में खली भी गिरती है। इस प्रकार पहली बरसात में वह घुल कर पौधे के खाद्य के लिये तैयार हो जाती है। तजुर्बा से यह पता लगा है कि इस को खेत में छिड़काने अथवा बुरकने की बनिस्बत ऊपर बतलाई

हुई तरकीब को काम में लाना अधिक गुणकारी व फायदेमन्द है। इस रीति से खली डालने में फी एकड़ लगभग १—१२—० खर्च लगता है।

खली की मात्रा

फी एकड़ कितनी खली डालना चाहिये इसकी जाच करने के लिये जलगाव फार्म पर दो वर्षों तक प्रयोग किये गये। उन प्रयोगों से यह पता लगा कि खली की मात्रा फी एकड़ ४०० पौंड से अधिक कर देने पर उस मान से फ़सल की पैदावार में बढ़ती नहीं होती। इन्हीं प्रयोगों के आधार पर कृषि विभाग की ओर से इस खाद की मात्रा के विषय में नीचे बतलाई हुई सिफारिशें की गई हैं—

१ जिन स्थानों में २० इञ्च से अधिक बरसात होती हो वहा फी एकड़ ३०० पौंड खली से अधिक नहीं डालना चाहिये।

२ जहा वर्षा २० इञ्च से कम होती हो, वहा २०० पौंड खली डालना चाहिये।

अन्य खादों के प्रयोग

नागपुर कृषि क्षेत्र की रिपोर्ट से मालूम होता है कि सड़ाये हुए गोबर और पेशाब के खाद से कपास की फसल को अच्छा फ़ायदा हुआ। करीब १० साल के प्रयोगों का फल नीचे दिया जाता है, उस से पाठकों को गोबर और मूत्र के खाद की उपयोगिता मालूम होगी।

	पैदावार सेर में
(१) बिना खाद के खेत में	२००
(२) गोबर के खाद दिये हुए खेत में	३३५
(३) ढोरों के पेशाब के खाद दिये हुए खेत में	३६०
(४) पेशाब और गोबर मिले हुए खाद से	४७०

उपरोक्त रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि गोबर और पेशाब के मिले हुए खाद के देने से कपास की सबसे अधिक पैदावार हुई।

अकोला फार्म के प्रयोग

दस साल के प्रयोगों की औसत पैदावार

१ बिना खाद	१६० सेर
२ गोबर का खाद	१६२ ,,
३ पेशाब का खाद	२७०
४ गोबर और पेशाब का मिश्रण	३५४

कहने की आवश्यकता नहीं कि अकोला फार्म पर भी गोबर और पेशाब के मिश्रण से अधिक अच्छे नतीजे निकले।

नागपुर के अन्य प्रयोग

नागपुर में कपास की खेती पर ढोरों के मल मूत्र के खाद के और भी प्रयोग हुए। १२ मास तक इकट्ठा किया हुआ एक बैल जोड़ी का गोबर और पेशाब कपास के एक एकड़ खेत में दिया गया, जिसके नीचे लिखे हुए नतीजे निकले।

	कपास पौन्ड में
सिर्फ गोबर	४५८
ढोरों का पेशाब	४६४
गोबर और पेशाब	६२२
बिना खाद	२७५

उक्त तजुर्बे से भी मालूम होता है कि गोबर और पेशाब को मिला कर देन से फसल की पैदायश में लगभग ड्योढ़ा फर्क हो जाता है।

खेती करने वाले अनुभवी पाठक जानते हैं कि कपास को नाईट्रेट ऑफ सोडे का कृत्रिम खाद दिया जाता है, पर नागपुर के प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि नाईट्रेट ऑफ सोडा के बजाय गाय बैल का पेशाब कपास की खेती के लिये ज्यादा अच्छा होता है।

	कपास का औसत पैदावार
आठ गाड़ी गोबर और ६६ पौन्ड नाईट्रेट	६६८
आठ गाडी गोबर और चार गाडी। पेशाब से भीगी हुई मिट्टी।	७०२

इसके अतिरिक्त मनुष्य के विष्टा का खाद, हरी खाद, नगर के नालों का खाद आदि भी कपास की फसल के लिये बड़े उपयोगी हो सकते हैं। पर हम समझते हैं कि कम्पोस्ट खाद ही का उपयोग विशेष लाभदायक है। अगर वह उपलब्ध न हो तो ढोरों के सड़े हुए गोबर और पेशाब को मिलाकर बनाया हुआ खाद कपास

की फसल को देना चाहिये। मनुष्य के विष्टा में राख और थोड़ा चूना मिलाकर देना भी हितकर है। हमने इन खादों पर इसलिये जोर दिया कि इन्हे प्राप्त करना भारत के गरीब किसानों के लिये ज्यादा मुश्किल नहीं है। जैसे कपास की खेती के लिये नगर के नाला का खाद भी बड़ा बढ़िया हो सकता है, पर इसका प्रबन्ध होना मौजूदा हालत में मुश्किल है।

बीज।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं अच्छी खेती के लिये अच्छे बीज की बड़ी आवश्यकता है। "जैसा बीज वैसा फल" की कहावत भी मशहूर है। बीज के चुनाव के समय हमें कई बातों पर ध्यान देने की जरूरत है। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिये कि वह धान ऐसी जाति का हो जो उस भूमि को मानने वाली हो, जिसमें वह बोया जाने वाला है। जैसे इन्दौर के प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीयूट ने कई प्रयोगों के पश्चात् यह अनुभव किया कि मालवा की भूमि में मालवी और रोजियम नामक दो जातियों के कपास सब तरह से अधिक लाभदायक होते हैं तो किसानों को चाहिये कि वे उक्त संस्था के अनुभव का फायदा उठाकर उन्हीं जाति के बीजों को अपने खेतों में बोने का प्रयत्न करें। इससे उन्हें बड़ा मुनाफा होगा। मालवा में मालवी कपास तो बहुत ही अनुकूल पड़ता है। वह इस भूमि में खूब फलता फूलता है। उसकी पैदावार ज्यादा बैठती है। उसमें ऐसे गुण भी हैं, जिनकी सब जगह कद्र हो सकती

है। चुनाई के वक्त इसका पौधा रुई से लबालब भरा हुआ दिख लाई देता है। इसमें मौसम की प्रतिकूल स्थितियों का (Adverse Monsoon Conditions) मुकाबला करने की भी ताकत है। यह जल्दी भी पकता है। ऐसी स्थिति में मालवी कपास के अच्छे चुने हुए बीजों को बोना ही यहाँ के किसानों के लिये हितकर है। यही बात दूसरे प्रान्तों के किसानों के लिये भी लागू हो सकती है। जिस भूमि को कपास की जो जाति अनुकूल पड़े उसमें उसी के बीज बोना लाभकारक हो सकता है। इसके लिये प्रयोग किये जाने चाहिये। अगर कोई ज्यादा अच्छी जाति, चाहे वह देशी हो या विदेशी, किसी प्रान्त की भूमि को अनुकूल पड़ती हो और उसमें किसानों का अधिक लाभ होता हो तो, उसे बोने में बड़ी तत्परता दिखलाना चाहिये। अगर किसी वैज्ञानिक पद्धति से वह भूमि किसी श्रेष्ठ जाति के कपास के अनुकूल बनाई जासके तो उसके लिये भी प्रयत्न करना चाहिये।

मालवी कपास अगर उपलब्ध न हो सके तो राजियम कपास के अच्छे चुने हुए बीजों को बोना चाहिये।

इन्दौर की कृषि-संस्था के प्रयत्न।

मालवा की भूमि के लिये मालवी कपास की श्रेष्ठता को इन्दौर के प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। ईसवी सन् १९२४ में इस संस्था ने इन्दौर राज्य के निमावर जिले के कन्नौद नामक कस्बे से सबसे अच्छे कपास के बीज

प्राप्त किये। कई वर्षों तक चुनाव पद्धति (Selection) से इनकी छटनी होती रही। इसके बाद जो बीज प्राप्त हुए उनसे जहाँ रुई की पैदावार अच्छी हुई, वहाँ गुण में भी वह ऊँचे दर्जे की रही। किसानों ने इस बीज को अपनाया। उन्हें यह अनुभव होगया कि अन्य बीजों की अपेक्षा मालवी और रोजियम जाति के चुने हुए बीजों से जो कपास पैदा होता है वह ऊँचे दर्जे का होता है और इन्दौर की मीलों से उसकी कीमत भी ज्यादा आती है। कहने का अर्थ यह है कि बीज ऐसी जाति का चुनना चाहिये जो भूमि को मानती हो और जिसके पौधे से अधिक मिकदार में रुई निकलती हो।

मिलवां (मिश्रित) बीजों से हानि।

भारत के किसान अक्सर जिनिंग फैक्टरी से कपास के बीज प्राप्त करते हैं। इसमें सब तरह के अच्छे बुरे बीज मिले हुए रहते हैं। बीज प्राप्त करने की यह पद्धति अच्छी नहीं है। खेती के लिये तो कपास की उसी जाति का बीज अलग रखना चाहिये, जो कि प्रयोगों के द्वारा सब दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हो चुकी हो। इन बीजों को बड़ी हिफाजत से रखना चाहिये। किसानों को चाहिये कि वे अपने सामने कपास की अच्छी जाति का बीज निकलवा कर अलग रखलें। उनमें दूसरे बीजों की मिलावट न होने दें। कितने अफसोस की बात है कि यहाँ के किसान जिन बीजों को ढोरों के खिलाने के काम में लाते हैं उन्हें ही बोने के काम में ले आते हैं।

भारी बीजों की उपयोगिता

कपास की अच्छी पैदावार के लिये अच्छे बीजों का बोना बहुत ही जरूरी है। जो किसान अपने खेतों में हलका या रोगी बीज बो देते हैं, उनकी पैदावार अच्छी नहीं होने पाती और पौधों को कई बीमारियाँ लग जाती हैं। कपास की अलग २ जातियों के बिनौलों के वजन में फर्क रहता है। कई जाति के बिनौले वजनदार होते हैं और कई के हलके रहते हैं। इसके अलावा अच्छे पके हुए व रोग से बचे हुए कपास के बिनौले बड़े व वजनदार होते हैं क्योंकि उनकी बाढ़ पूरी होती है। अकसर जीन में रुई निकलवाने के वक्त कई जाति के बिनौलों के इकट्ठा होजाने से किसानों को अच्छा बीज छाँटने में बड़ी मुश्किल होती है। अगर किसी खास जाति का बीज उन्हें मिल भी गया तो भी उसके हलके व पूरी तौर से न बढ़े हुए बीजों को अलग न कर सकने के कारण उनके खेत की फसल एकसा नहीं होती। अर्थात कहीं २ पौधे अच्छे बढ़ते हैं और कहीं २ उनकी बाढ़ शुरू ही से मारी जाती है। इस तरह उनकी पैदावार में फर्क आजाता है और सारे खेत में एकसा खाद देने व बराबर मेहनत करने पर भी वे पूरी पैदावार नहीं लेने पाते। बड़े व वजनदार बीज बोने से सब के सब बीज उगते हैं और पौधे की बाढ़ अच्छी होती है। इस प्रकार बीज भी कम खर्च होता है और पौधे की बाढ़ मारी जाने के कारण आगे जो पैदावार में कमी आती है, उसका डर बिलकुल नहीं रहता। इस

लिये बडे और वजनदार बीजों के छाँटने की तरकीब का जानना बडा जरूरी है। बम्बई के कृषि-विभाग ने इस बारे मे जो तरकीब निकाली है, उसका साराश हम यहाँ देते हैं। आशा है किसान इस तरकीब को काम में लाकर अपने खेत की पूरी उपज लेने का प्रयत्न करेंगे।

भारी बीज छांटने की तरकीब

वैसे तो भारी व बड़े बीज को हलके बीज से हाथो के द्वारा अलग कर सकते हैं पर जहाँ किसानो को अपने खेतों मे मनो से बीज बोना पडता है, वहाँ यह तरकीब काम नहीं देसकती। अक्सर देखा गया है कि हिन्दुस्थानी कपास की सब जातियों के बड़े व वजनदार बीज पानी में डूब जाते हैं और हलके बीज ऊपर तैरते रहते हैं। इसलिये अगर किसान इसी तरकीब से फ़ायदा उठावें, तो सहज ही अपना काम बना सकते हैं। वैसे तो भारी बीज अलग करने के लिये और भी तरकीबें हैं, पर उनमें ज्यादा होशियारी की जरूरत है। इसलिये किसानों के लिये यही तरकीब सबसे अच्छी समझी गई है। इस तरकीब को काम में लाते समय नीचे लिखी हुई बातें ध्यान में रखना चाहिये।

कपास के बीजों में रुई का थोड़ा बहुत रेशा रह ही जाता है और इस से वे गुच्छों में बंध जाते हैं और सहज ही अलग नहीं होते। अगर इस प्रकार के बीजों को पानी में डाल दिया गया तो वजनदार बीज भी पानी के ऊपर तैरते रहेंगे, क्योंकि

छोटे व हलके बीज, जो कि उनके साथ लगे हुए होंगे, उनको इस काम में मदद देंगे। कभी २ बिनौलों के साथ कुछ रुई लगा रहती है और इस प्रकार वे वजनदार होते हुए भी पानी के ऊपर तैरते हैं। अतएव हलके बीजों को तिराने व वजनदार बीजों को अलग छाँटन के पहले ऐसी तरकीब करना चाहिय जिससे ऊपर बतलाइ हुई दोनों मुश्किलें रफा हो जावें। यह तरकीब इस प्रकार हो सकती है कि बीजों को तिराने के पहल उन्हें थोडे से पानी में मिला कर बोरी (टाट) के टुकडे से पोछ लिया जावे। पर यह तरकीब काम में लाते वक्त भी एक सावधानी रखना चाहिये। वह यह है कि बीजों का पोंछने के बाद जल्दी ही नमक के पानी में डाल दिया जावे, क्योंकि अगर बीजा को थाडी देर तक भी गीला रखा तो व फूल जाते हैं और फिर हलके व भारी बीजों को अलग करना बडा मुश्किल होजाता है। इतना ही नहीं, गीले बीज निकम्मे हो जाते हैं।

बराडी कपास में तो केवल पानी के द्वारा हलके व भारी बीजों को अलग कर सकते हैं। पर कुमता व भडोंच कपास के हलके भारी बीजों को छाटना जरा मुश्किल है, क्योंकि वे निरालस पानी में वजनदार बीजों की तरह पेंदी में बैठ जाते हैं। इसलिये निरालस पानी का उपयोग न करते हुए नमक मिश्रित पानी काम में लाना अच्छा रहता है। एक घड़े भर पानी में २ सेर नमक डालने से काम बन जाता है।

बीज तिराने की रीति

नमक के पानी को एक बालटी या किसी गहरे (उन्डे) बर्तन में भर देना चाहिये। इस बर्तन को पौन हिस्से तक भरना चाहिये, जिस से हलके बीजों के तैरने के लिये जगह बच जावे। इसके बाद इसमें बीज डालना चाहिये और जब पानी में चारों ओर बीज हो जावें तो एक लकड़ी से धीरे २ सब बीजों को हिला देना चाहिये। इस समय जितने बीज ऊपर तैरने लग उन सब को अलग निकाल लेना चाहिये और फिर पहले की तरह नये बीज बालटी में डाल कर हलके बीज निकाल लेना चाहिये। जब बालटी भारी बीजों से आधी से ऊपर भर जाने तो पानी का दूसरी बालटी या बर्तन में डाल देना चाहिये और फिर उसमें दूसरे बीजों का इसी तरह तिराना चाहिये। इसके बाद भारी बीजों का मामूली ढग पर खेत में बो देना चाहिये। अगर किसी कारणवश वे जल्दी न बोये जासकते हों तो उन्हें अच्छी तरह छाया में सुखा लेना चाहिय। तजुर्बो से मालूम हुआ है कि इस प्रकार सुखाये हुए बीज तीन सप्ताह तक रखे जा सकते हैं।

ऊपर बतलाई हुई तरकीब बिलकुल सरल है और इसमें किसी प्रकार का नुकसान नहीं है क्योंकि दो सेर नमक के मिश्रण से काफी बीज छाँटा जा सकता है। इसके अलावा किसान हलके बीज को सुखा कर उसका उपयोग अपने ढोरों के बाँटे में

कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कहीं २ हलके व भारी बीज की छँटनी 'सूप' से की जाती है। एक आदमी सूप में बीज भर कर उन्हें हवा में उड़ाता है। इस से जो बीज भारी व बड़े २ होते हैं, वे उसके पैरों के पास आगिरते हैं और जो हलके व छोटे होते हैं, वे हवा के झोंके से कुछ दूरी पर जा गिरते हैं। कभी २ जब हवा बराबर नहीं चलती, तब इस प्रकार छँटनी करने म बड़ी तकलीफ होती है। ऐसे समय किसान कपड़े का पखा बनाते हैं और उससे सूप के पास हवा करते हैं। इस प्रकार जब बीज अलग २ हो जाते हैं, तो एक औरत उनको अलग २ इकट्ठा कर लेती है। जो बीज सूपवाले आदमी के पैरों के पास गिरते हैं उनको बोने के काम में लेते हैं। इस प्रकार की तरकीब से दूसरे अनाजों की छँटनी मुमकिन हो सकती है पर कपास की छटनी में यह तरकीब काम नहीं दे सकती, क्योंकि यदि छोटे व फूटे बीजों को भी कपास लिपटा रह गया तो वे भारी बन जाते हैं और इस प्रकार वे सूप वाले आदमी के पैरों के पास अर्थात् भारी बीजों के ढेर ही में आ गिरते हैं।

मि० एच० जे० बरर और ई० बी० बायकिन नामक दो महाशयों न अमेरिका में बीज की छँटनी व कपास के रेशे को अलग निकालने की बहुत अच्छी तरकीब ढूंढी है। आपने बीज को गोबर के पानी के बजाय गेहूँ के आटे के पानी में डुबाने की सलाह दी है।[1] आपकी तरकीब का पूना के कृषि प्रयोग क्षेत्र में

प्रयोग किया गया तो वास्तव में वह बड़ी सन्तोषप्रद प्रतीत हुई। इस तरकीब से ऊपर बतलाई हुई सब कठिनाइयाँ दूर हो गईं और जो कपास का रेशा बीज के साथ एक बार चिपक गया वह पानी में डुबोने या गीला करने तक जैसा का तैसा ही बना रहा, जिससे कि बीजों को एक बार अलग कर लेने पर फिर गुच्छे न बँधने पाए।

यह तरकीब भी गोबर के पानी वाली तरकीब की तरह सरल है। पर इसमें एक औजार की आवश्यकता होती है। इस औजार की कीमत बहुत ही थोड़ी है और इसे साधारण सुतार भी तैयार कर सकता है। इसका आकार प्रकार एक ढोल का सा रहता है। [देखो चित्र न० १] इसके दोनों बाजुओं पर धुरा निकला रहता है और उसी से एक मूठ लगी रहती है। इस ढोल में करीब १०, १२ सेर कपास के बीज भरे जा सकते हैं। इसके ऊपरी हिस्से में एक छेद बना कर उसमें ढक्कन बना देते हैं। यह छेद बीज भरने व निकालने का द्वार है। हर दस सेर कपास के बीजों के रेशे को ठीक करने के लिये ८ औंस गेहूँ के आटे को एक पिन्ट (डेढ़ पाव) पानी में खूब हिला कर मिश्रण तैयार करते हैं। इसके बाद इसमें दो पिन्ट पानी और मिला देते हैं। इस को फिर गरम करते हैं और जब यह चिपकने लग जाता है तो उतार कर ठण्डा कर लेते हैं। इसके बाद इसको यन्त्र में डाल देते हैं और ऊपर से २० सेर कपास के बीज डाल कर ढोल का मुँह बन्द कर देते हैं। बाद में उसको करीब १५, २० मिनट तक खूब

घुमाते हैं, जिससे कि आटे का पानी हर एक बीज को लग कर रेशे को चिपका देता है और सब बीज एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। इस तरकीब की तारीफ यह है कि बीज ढोल से निकालने के पहले ही सूख जाते हैं और निकालते समय ऐसे अलग २ बिखरे हुए मालूम होते हैं, मानों वे चने हों। यहां यह बात बतला देना आवश्यक है कि अलग २ जाति के बीजों के लिये आटे व पानी का परिमाण अलग २ रखना पड़ता है। मसलन नड़ियाद में बोये जाने वाले रोज़ियम जाति के कपास के बीज के लिये सवाये आटे और सवाये पानी की आवश्यकता होती है।

बीज छाँटने की तरकीब

बीज छाँटने के लिये जो मशीनें कई स्थानों पर काम में लाई जाती हैं, उनके द्वारा भारी बीज, फूटे और हलके बीजों से ठीक तरह अलग नहीं होते। मि० वेबर व बॉयकिन साहब ने अपने प्रयोगों से यह ढूंढ निकाला है कि कपास के बीज छाँटने की मशीन में एक बहुत लम्बा हवा आने का मार्ग रखना चाहिये जिससे हवा खूब ज़ोर से आती रहे और बीजों पर उसके प्रवाह का काफी असर होता रहे। इस प्रकार की रचना से बीज हवा के साथ उछलते हैं और उसका यह फल होता है कि भारी बीज नीचे गिर जाते हैं व छोटे व हल्के बीज उड़ कर एक तरफ गिर पड़ते हैं।

पूना के कृषि कॉलेज में इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख कर एक फटकने की मशीन में आवश्यक सुधार किया गया। इस मशीन के केन्द्रस्थल में लगभग ४ इञ्च चौड़ा एक छेद बनाया गया और उसी पर ५ फुट ऊँचाई का एक हवा मार्ग (Flue) रखा गया। इस के साथ ही परों के चक्र में भी परिवर्तन किया गया, जिस से वे ज्यादा तेजी से चल सके। अब इस मशीन के जरिये एक मिनट में लगभग एक पौंड बीज छँटता है और इस अवधि में पंखा २४० या २५० चक्कर लगाता है। इस तरह एक एकड़ में बोया जाने वाला बीज आधे घन्टे में छाँटा जा सकता है। मशीन के बनाने में ८० से लगाकर ५० रुपये तक खर्च बैठता है। यह खर्च मामूली किसानों की हैसियत से कुछ अधिक मालूम होता है। अतएव यदि गाव के सब किसान मिल कर सहकारिता की पद्धति पर यह मशीन मगवा लें तो यह कठिनाई सहज ही रफा हो सकती है।

बीज की छटनी

पूना के बाजार से खरीदे हुए बीज के प्रयोग

शुरू २ में उक्त मशीन का पूना के प्रयोग क्षेत्र में उपयोग किया गया। प्रयोग के लिये पहले पूना के बाजार से बिनौले (कपास के बीज) खरीदे गये, जिन में बहुत से फूटे हुए और रोगीले बीज थे। मशीन की उपयोगिता की जाँच करने के लिये ये बीज बड़े अच्छे थे। बीज के रेशों को आटे के पानी के

द्वारा जमा देने के बाद इस मशीन से बीज छाँटने पर नीचे लिखे हुए नतीजे निकले—

भारी बीज (फी सैंकड़ा)	हलके व खराब बीज (फी सैंकड़ा)	मिट्टी, ककर, रुई के रेशे आदि जो कि चलनी में साफ हुए (फी सैंकड़ा)
७२—१ फी सैकड़ा	१३ –१	१४—००

यहाँ हलके व भारी बीज व बिना छँटनी के बीजों के अङ्कुरित होने के विषय में भी जो प्रयोग किये गये उनका नतीजा नीचे दिया जाता है।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की औसत फी सैकड़ा	रिमार्क
१ बिना छँटा हुआबीज	४०	अकुरित होने का परिमाण। आठ-प्रयोगों की औसत के आधार पर रखागयाहै
२ छँटा हुआ भारीबीज	५५	
३ मशीन से उड़े हुए हलके बीज	२६	

ऊपर के अंकों से साफ जाहिर होता है कि भारी बीजों को अलग छाँटने से फी सैकड़ा १३ बीज ज्यादा अंकुरित हुए। यह नतीजा उन बीजों का है, जो कि खराब व रोगी थे। इसी प्रकार यह मालूम होता है कि मशीन से उड़े हुए हलके बीज अच्छी तरह अंकुरित नहीं हो सकते। इन बीजों में जो २६ फी

सैंकडा अंकुरित हुए, उनमें से भी केवल १० फी सैंकडा ही ऐसे थे, जिन के कि अच्छे पौधे लगे।

(२) खानदेशी बीज

इसके बाद खानदेशी कपास के बीजों के प्रयोग किये गये। इन बीजों से नीचे बतलाये मुताबिक नतीजे निकले। ये बीज नीचे बतलाई हुई तादाद में अंकुरित हुए—

भारी बीज फी सैकडा	हल्का व रोगीला बीज, जो कि मशीनसे उड़ गया (फी सैकडा)	पत्थर, कंकर, मिट्टी या रुई के गुच्छे आदि (फी सैकड़ा)
८६	४	१०

ये बीज नीचे लिखी तादात में अंकुरित हुए —

बीज की किस्म	अंकुरित होनेकी औसत	रिमार्क
१ बिना छँटे हुए बीज	७२	यह प्रमाण आठ प्रयोगों की औसत है
२ भारी छँटे हुए बीज	७९—९	

इन बीजों में से जो थोड़े हलके बीज मशीन से उड़कर बाहर निकले, उनमें अंकुरित होने लगे। बीजों की संख्या बहुत कम थी। इस बार बीज छाँटन के यंत्र में कुछ गड़बड़ होजाने के कारण बीजों की छटनी ठीक नहीं हुई। साथ ही यह भी म लूम

हुआ कि यदि पंखों की गति और ज्यादा तेज करदी जाय तो उसमें इस काम में और अधिक सहायता मिलेगी। अतएव पखों के धक्र को बदल कर उनको ड्योढी गति कर दी गई। इस बार बीज की छटनी के जो प्रयोग किये गये उनका नतीजा नीचे लिखे मुताबिक निकला।

भारी बीज (फी सैकडा)	हल्का बीज जो कि पंखों की हवा से उड कर अलग हो गये (फी सैकडा	मिट्टी, कचरा व रुई के रेशे (फी सैकडा)
७१—५	२१—८	६—७

इन बीजों से नीचे बतलाये हुए परिमाण में बीज अकुरित हुए।

बीज की किस्म	अकुरित होने वाले बीजों को तादाद फी सैकडा	रिमार्क
१ बिना छँटा हुआ बीज	*७२	* खाना न० २ में बीज के अकुरित होने की जो तादाद बतलाई गई है, वह ८ प्रयोगों की औसत है।
छँटा हुआ भारी बीज	८४	
३ हल्के उडे हुए बीज	३६	

इस बार छँटे हुए बीजों में लगभग १३ प्रति सैकड़ा बीज ज्यादा अंकुरित हुए। इस बार के प्रयोगों से यह महत्व पूर्ण बात मालूम हुई कि पंखे की गति बढाने से बीज के अंकुरण की संख्या फी सैंकड़ा ५ बढ़ जाती है।

(३) रोजी कपास के बीज

इसके बाद 'रोजी' कपास के बीज काम में लाये गये। ये नड़ियाद के फार्म से मँगवाये गये थे। फी सैकड़ा बीज की छटनी नीचे लिखे मुताबिक हुई।

भारी बीज	हल्के व बिगड़े हुए बीज	मिट्टी, कंकर व रूई के रेशे आदि
७७	६	१५

इस जाति के बीज नीचे बतलाये मुताबिक अंकुरित हुए।

बीज की किस्म	अंकुरित होनेकी तादाद	रिमार्क
१ बिना छँटा हुआ बीज	४०—८	अंकुरित होनेकी तादाद आठ प्रयोगों की औसत के आधार पर रखी गई है।
२ छँटा हुआ भारी बीज	७६	
३ हल्का बीज	२९—५	

इस जाति के कपास में बिना छँटे हुए बीजोंके अंकुरित होने की तादाद बहुत कम मालूम होती है और छँटाई के बाद एकदम ३५ ही सैकड़ा बढ़ जाती है।

(४) भड़ौंच कपास के बीज

इस कपास के बीज की छँटनी फी सैकड़ा निम्न प्रकार हुई।

भारी बीज	हलके व बिगड़े हुए बीज	मिट्टी, कंकर व रूई के रेशे आदि
७५	१६	७

इन छँटनी के बाद जो बीज बोये गये तो वे नीचे लिखे परिमाण में अंकुरित हुए।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की संख्या	रिमार्क
बिना छटे हुए बीज	३०	
छटे हुए बीज	४८	
हलके उड़े हुए बीज	१५	

ऊपर के नक्शे में बीजों के अंकुरित होने की संख्या कम मालूम होती है। इसका कारण यह है कि जिस साल ये बीज प्रयोग के लिये चुने गये थे, उस वर्ष कपास की फसल बिगड़ गई थी। इसलिये एक बार छटे हुए बीजों को फिर मशीन में डालकर

छंटनी की गई। इस बार 'फ्ल्यू' की लम्बाई एक फुट कम कर दी गई और पंखे की गति फी मिनिट २०० २५० चक्कर के हिसाब से कायम की गई। इस प्रकार छँटे हुए बीजों से निम्न लिखित नतीजे निकले।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की तादाद फी सैकड़ा	रिमार्क
दुबारा छंटा हुआ भारी बीज	६०	आठ प्रयोगों की औसत
हलका बीज	४०	

इन नतीजों से मालूम होता है कि बीज की दुबारा छंटनी से उनके अंकुरित होने की तादाद में कुछ भी फर्क न आया। इसमें एक प्रकार से उल्टा नुकसान ही रहा क्योंकि ४० फी सैकड़ा बीज 'फ्ल्यू' से ऊपर उड़गया। इसमें करीब २ आधा बीज ऐसा था जो अंकुरित हो सकता था।

धारवार अमेरिकन कपास

मध्यप्रान्त में धारवार अमेरिकन कपास के प्रयोग किये गये। इस कपास का बीज धारवार के पास कुर्तकोटी नामक एक गांव में मँगवाया गया था। इसकी छँटनी फी सैकड़ा नीचे लिखे अनुसार हुई।

भारी बीज	हल्का व पल्यू म उडाया हुआ बीज	ककर, मिट्टी, व रुई के गुच्छे वगैरह
८१	१३	४

ये बीज नीचे बतलाये अनुसार अकुरित हुए।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की तादाद	रिमार्क
१ बिना छँटे हुए बीज	७९	आठ प्रयोगा की औसत
२ भारी छँटे हुए बीज	८८	
३ पल्यू से उडाये हुए हलके बीज	५६	

इस बार के प्रयोग में उडाये हुए बीजों के अकुरित होने को सख्या बहुत अधिक रही। इन बीजों मे अच्छे बीजों की तादाद भी कुछ अधिक थी। इससे यह नतीजा निकला कि पखे की गति इस बीज की छँटनी के लिये ज्यादा तेज थी, जिस के कारण अच्छे बीज भी ऊपर उड गये थे।

उपरोक्त प्रयोगों के नतीजो का साराश यह है।

(१) बोने के लिये साधारण हैसियत के किसान जो बीज काम में लाते हैं, वे बहुत हलके दर्जे के रहते हैं और उनमें से बहुत थोडी तादाद में बीज अकुरित होते हैं।

(२) भारी व उत्तम बीजों को अलग कर लेने से वे ज्यादा तादाद में अंकुरित होते हैं।

(३) गेहूँ, ज्वार व दूसरे बिना रेशेदार बीजों को छाँटने के लिये जो औजार काम में लाये जाते हैं वे कपास के बीजों की, (जिन के साथ रुई क परमाणु लगे रहते हैं) छटनी में काम नहीं देते। अतएव कपास के भारी बीज अलग करने के लिये पहले उनको आटे के पानी में डुबो कर रुई के रेशों को दबा देने की आवश्यकता है। इसी प्रकार भारी बीज को छाँटने के लिये मामूली फटकने की मशीन से काम नहीं चलता। इसलिये उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहिये।

(४) कपास के बीजों पर जो रुई के रेशे लगे रहते हैं उनको आटे के पानी में डुबाने के बाद चित्र न० १ में बतलाई हुई मशीन में भर कर फिराना चाहिये। इस तरकीब स बहुत कम खर्च में बीज तैयार हो जाते हैं।

(५) बीजों को छटनी के यन्त्र द्वारा अलग २ करने में उसके अंकुरित होने की तादाद फी सैकडा ८ से लगा कर ३५ तक बढ़ती है

बीज की तादाद

एक एकड़ म कितना बीज बोया जाना चाहिये, यह बात निश्चय-पूर्वक नहीं बतलाइ जा सकती। ज्यादा फैलने वाली जातियों का बीज कम लगता है और कम फैलने वाली जातियों

का ज्यादा। इसके अतिरिक्त अगर बीज खराब और हलके दर्जे का होगा तो ज्यादा बोना पड़ेगा। फिर भी साधारण तौर से एक एकड़ में ९-१० सेर से ज्यादा बीज न बोना चाहिये।

जुताई

दूसरी फसलों की तरह कपास की खेती के लिये भी गहरी जुताई हितकर है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कपास के पौधे को भली प्रकार फलने फूलने के लिये वायु की जरूरत होती है। जिस जमीन में वायु का प्रवेश ठीक नहीं होता, वहां कपास का पौधा अच्छी तरह नहीं पनप सकता। इसलिये जुताई के द्वारा खेत की मिट्टी इतनी मुलायम, भुरभुरी और नर्म कर देना चाहिये कि जिस से जमीन में हवा का आवागमन बराबर होता रहे। इसके लिये आवश्यक है कि खरीफ की फसल के कटते ही देशी हल चला दिया जाय। हमारे यहां के किसान बखर से ही खेत जोतते हैं। किन्तु इससे जुताई अच्छी नहीं होती। किसानों को ध्यान रखना चाहिये कि कपास की खेती के लिये अच्छी कमाई करने की बड़ी जरूरत है।

अकोला में किये हुए प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि बखर की उथली जोत की अपेक्षा हल द्वारा की हुई जुताई से पैदावार अधिक होती है। नागपुर के कॉलेज फॉर्म पर भिन्न भिन्न प्रकार की जुताई के नतीजों का निरीक्षण किया गया जिस से यह मालूम हुआ कि हल द्वारा की गई गहरी जुताई से

फायदा होना न होना या मुख्य स्थानीय तत्वों पर अवलम्बित है।

(१) जिस साल, विशेषकर जुलाई में, बारिश हल्की गिरती है, उस साल गहरी जुताई करने से ज्यादा अच्छी पैदावार होती है।

(२) जिस साल बारिश भारी होती है और इसके साथ ही जहां जमीन में पानी के निकास का प्रबन्ध ठीक नहीं रहता, उस साल वहां हल द्वारा की हुई गहरी जुताई से फसल को नुकसान पहुँचता है।

इस तरह जिन सालों में जुलाई में बारिश हलकी होने से फसलें अच्छी आई और जिन में बारिश ज्यादा होने से कम आई, ऐसे कई सालों का औसत देखने से हल द्वारा की हुई गहरी जोत ही विशेष लाभकारक मालूम हुई। यह भी मालूम हुआ कि जिन खेतों से पानी का ठीक निकास हो जाता है, और जहां के पृष्ठ भाग के नीचे की जमीन खुली है, वहां हल द्वारा की हुई गहरी जुताई ही फायदेमन्द होती है। पर इसके विपरीत। जहां खेत के गहरे तथा निचास पर होने के कारण पानी का निकास नहीं होता, वहां गहरी जुताई से नुकसान होता है।

इसका कारण स्पष्ट है। हम पहले कह चुके हैं कि कपास की फसल को फलने फूलने के लिये—उसकी जड़ों की उन्नति के लिये—भूमि में वायु प्रवेश की बड़ी ही आवश्यकता। मानवी- है जीवन की तरह पौधों के जीवन में भी वायु की अनिवार्य्य

आवश्यकता है। भूमि में वायु पहुँचाने के लिये खेत की मिट्टी का मुलायम और नर्म होना जरूरी है। यह बात गहरी जुताई से हो सकती है। दूसरे शब्दों में अधिक स्पष्टतया से यों कह लीजिये कि भूमि को इस योग्य बनाना कि उसमें हवा खेलती रहे यह गहरी जुताई ही का काम है। पर जिस प्रकार कभी कभी विशेष परिस्थिति में अच्छी चीज भी बुरी हो जाती है, वैसे ही जिस जमीन में पानी के निकास का प्रबन्ध नहीं है, वहां गहरी जुताई से इसलिये नुकसान पहुँचता है कि सारा वर्षा के समय गहरी जुताई वाले खेत में दूसरे खेत से भी अधिक पानी भर आता है। इससे जहां गहरी जुताई से भूमि में वायु प्रवेश का मार्ग खुला होना चाहिये, वहां उल्टा वह और भी बन्द हो जाता है। इससे फसल को लाभ न बदले नुकसान हो जाता है।

सब बातों का विचार करते हुए हम कपास की खेती के लिये गहरी जुताई ही की सिफारिश करते हैं, पर इसमें भी अधिक जोर की सिफारिश हम खेत को ढाल देकर नालियों के द्वारा वर्षा के फालतू पानी को निकाल देने के लिये करते हैं।

मालवा की काली भूमि के लिये तो गहरी जुताई की और भी अधिक आवश्यकता है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि इस भूमि में कपास के पौधों के लिये अच्छी भोजन सामग्री रही हुई है। कपास की फसल को यह भूमि बहुत कुछ मुआफिक पड़ती है। अगर यह कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी

कि कपास की फसल के लिये यह सब से अच्छी भूमि है। पर यह अधिक चिपचिपी* होने के कारण बारिश के दिनों में इसके ढेले बन जाते हैं। इससे इसमें वायु प्रवेश का मार्ग बन्द हो जाता है। इसलिये कपास की सब से अच्छी पैदा लेने के लिये काली मिट्टी वाले खेत में गहरा जुताई के साथ साथ वर्षा के फालतू पानी के निकास का भी योग्य प्रबन्ध होना चाहिये।

बोना

मध्य-भारत और खास कर मालवा तथा निमाड आदि प्रान्तों में दो फन वाली नाई से कपास की बोनी की जाती है। मध्य प्रान्त में बड़े किसान तीन दांत वाले अरगडा नाम के औजार से और छोटे किसान बक्खर के पीछे बांस के पोले टुकड़े की नली लगा कर उसमें बोनी करते हैं। हमारी राय में नीमाड और मालवे में 'अरगड' से काम लेना ज्यादा फायदेमन्द है, क्योंकि इससे एक बार में दो के बजाय तीन 'चांस' बोये जा सकते हैं। इसका उपयोग करने से बोनी में ज्यादा किफायत होती है, और समय भी बचता है। हां, पहाडी जिलों में 'अरगडा' या दो फन (दांत) की नाई से बोनी नहीं की जा सकती। क्योंकि खेतों में पत्थर होने से ये औजार काम नहीं दे सकते। इसलिये ऐसे जिलों में एक फन (दांत) की नाई का उपयोग ही फायदेमन्द है।

* चिकनी या चिपकने वाली।

बोनी के सम्बन्ध में दूसरा सवाल समय का है। तजुर्बे से मालूम हुआ है कि कपास की बोनी जल्द करना विशेष महत्व का है। अकोला में प्रयोग द्वारा बतलाया गया है कि बारिश गिरने के पहले सूखी जमीन में बोनी करना लाभदायक है। पर यहां यह बात स्मरण रखना चाहिये कि उस खेत में नींदा आदि किसी प्रकार के घासपात नहीं रहने चाहिये। नहीं तो ज्यादा उत्पन्न का मुनाफा निंदाई के खर्च के कारण घट जायगा।

सन के उपरान्त कपास की फसल बारिश शुरू होने के पहले बोई जा सकती है। बारिश के पहले बोनी करने में यह फायदा है कि बीज को उगने को समय मिलता है और जोर शोर की बारिश शुरू होने के पहिले छोटे छोटे पौधे मजबूत और सुन्दर होजाते हैं।

कोई कोई किसान जल्दी बोनी करने के सम्बन्ध में यह शंका करते हैं कि अगर प्रारम्भ में बारिश होगई पर फिर उसने खींच करदी तो इससे जमीन ठीक तरह से न भीगने के कारण पौधे मर जावेंगे। यह आशंका सच है। पर क्या बिना किसी प्रकार की जोखिम उठाये कोई फायदा होसकता है। तिस पर भी कपास जैसी वस्तु के लिये ऐसी जोखिम उठाना कोई बड़ी बात नहीं है। इसमें जोखिम सिर्फ इतनी ही है कि फी एकड़ थोड़े से बीज का नुकसान होजायगा।

कपास के पौधों के बीज का अन्तर।

मध्य भारत और राजपूताने में कपास बहुत घना याने पास२ बोया जाता है। दो पौधों के बीच में भी कम फासला रखा जाता

है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि कपास की फसल की दो कतारों या दो चांसों में ४॥ फूट का (करीब एक हाथ का) अन्तर रहना चाहिये। दो पौधों के बीच में कितना अन्तर होना चाहिय, यह बात कपास की जाति पर अवलम्बित है। जिस जाति के पौधे ज्यादा फैलते हैं, उसके दो पौधों में कम से कम आधे या पौन हाथ का अन्तर रखना चाहिये। मालवी, निमाड़ी, रोझिया, आदि जाति के पौधों में एक या सवा बालिश्त का फासला रखना चाहिये। पौधों को बहुत ज्यादा पास पास रखने से उनकी बाढ में रुकावट पहुँचती है। वे फैलने नहीं पाते। इससे पैदावार कम होती है।

कुलपाई।

कपास के पौधे जब पाच छ अगुल ऊँचे होजावें तब उन पर कुलपे या डोरे चलाना चाहिये। बरसात का मौसम ग्वत्म होने के बाद एक दो बार डोरा देना जरूरी है। इसमें खेत जल्दी नहीं सुखेगा और काली जमीन नहीं फटेगी। यदि डोरे नहीं दिये जायगे तो जमीन फट जायगी और पौधे सूख जायँगे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि पैदावार कम होगी।

फसल का हेर फेर।

फसल के हेर फेर की क्यों आवश्यकता है, उससे क्या क्या फ़ायदे हैं, इस सम्बन्ध में हम पहले लिख चुके हैं। कपास की फसल को भी हेर फेर कर बोने ही में फायदा है। हम समझते हैं

कपास व पहले ऐसी फसल बोना चाहिये जो उसके लिये जमीन में भोजन सामग्री छोड़ जावे। मि० हावर्ड कपास से पहले मूँग फली का काश्त करने की सलाह देते हैं। नागपुर के प्रयागा से यह भी मालूम हुआ है कि कुलथी के बाद कपास बोने से बड़ा फायदा होता है। यहाँ जब कपास के बाद कपास बोया गया तो प्रति एकड़ ३३३ सेर कपास पैदा हुआ पर जब वही कुलथी के बाद बोया गया तो उसकी पैदावार प्रति एकड़ ६०९ सेर हुई। लग भग दूना फर्क पड़ गया। ज्वार के बाद कपास बोने की पद्धति हमारी राय में पैदावार की दृष्टि से ठीक नहीं है। इससे अच्छा तो यह है कि गेहूँ, चना और तुअर के बाद कपास बोया जावे। सन के बाद कपास बोने से भी बड़ा फायदा होता है।

कपास और पानी का निकास।

हम पहले कह चुके हैं कि कपास के खेत में पानी के निकास का योग्य प्रबन्ध होना चाहिये। इसके बिना कपास का पौधा भली प्रकार फल फूल नहीं सकता। खेती के अनुभवी विद्वान जानते हैं कि कपास का छोटा पौधा अपनी जड़ों के चारों तरफ जरूरत से ज्यादा पानी बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसके कारण हैं। खेतों में पानी निकास न होने से उनमें पानी भर जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि मिट्टी के कणों के बीच की जगह पानी से भर-जाती है। इससे कपास के पौधों की जड़ों को हवा कम मिलने लगती है। उनका दम घुटने लगता है। क्यों कि पौधों के जीवन

के लिये भी हवा की उतनी ही जरूरत है जितनी कि मनुष्यों के जीवन के लिये। हवा की इस रुकावट से दूसरा नुकसान यह होता है कि इससे बक्टीरिया नामक उन सूक्ष्म जीवाणुओं का कार्य बन्द होजाता है जो जमीन में रहे हुए स्वाभाविक खाद से अथवा हवा से पौधों के लिये नाईट्रेट के रूप में भोजन सामग्री तैयार करते हैं। इससे पौधे भूखों मरने लगते हैं और उनका भूखों मरना उनकी पत्तियों के पीली पड़ने से मालूम होता है। इसके अतिरिक्त खेत के अधिक गील रहने से कपास के पौधों की मुख्य जड़ें जमीन के अन्दर नहीं घुसने पातीं और बाद को जो दूसरी जड़ें निकलती हैं वे तड़क जाती हैं। वे ज्यादा पानी की ओर बढ़ने से मुँह मोड़ती हैं और भूमि की सतह की ओर दौड़ती हैं। जमीन लगातार गीली रहने के कारण यदि जड़ों की यह प्रवृति एक दफा कायम हो चुकी तो बाद में जमीन का गीलापन दूर करने के लिये कितने ही प्रयत्न क्यों न किए जावें पौधों की हालत नहीं सुधर सकती। पौधा ठिगना ही बना रहेगा। उसकी जड़ें नाकिस होजावेंगी। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि पैदावार कम होगी।

अमेरिकन कपास की खेती

हमारे किसान भाई अमेरिकन कपास को विलायती कपास कहते हैं। यह कपास देशी कपास की अपेक्षा अधिक बारीक, कोमल और चमकीला होता है। इसके तन्तु भी अच्छे निकलते हैं। इसके सूत से जो कपड़ा बनाया जाता है वह बड़ा ही मुलायम और चमकीला होता है। देशी कपास की अपेक्षा इसका मूल्य भी अधिक रहता है। कपड़े बनानेवाले कारखाने इसको बहुत ज्यादा पसन्द करते हैं। वे इसे बड़ी चाह से खरीदते हैं। इसकी रुई बहुत सफेद होती है।

इस कपास की सफल खेती के लिये कुछ बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। एक तो यह है कि इसकी खेती केवल उन्हीं स्थानों में होनी चाहिये जहाँ सिंचाई का काफी प्रबन्ध हो, जहाँ नहर हो या समय पर सिंचाई के लिये यथोचित पानी मिल सकता हो। जहाँ सिंचाई का यथोचित प्रबन्ध नहीं, वहाँ भूलकर भी इसे बोने का विचार न करना चाहिये। दूसरी बात यह ध्यान में रखना चाहिये कि जहाँ बैसाख और जेठ में सिंचाई का प्रबन्ध हो सकता हो वहीं इसकी खेती करना चाहिए। तीसरी बात यह है कि जिन खेतों में पानी भर जाता हो

उन खेतों में इसे कभी न बोना चाहिए। चौथी बात यह है कि विलायती कपास को देशी कपास से बिलकुल अलग रखना चाहिए, क्योंकि देशी कपास में मिल जाने से इसके गुणों में कमी आजाती है और इसकी कीमत घट जाती है।

जमीन

इसकी अच्छी काश्त के लिए दुमट या रेतीली जमीन, जिसमें खाद अधिक पड़ा हो, अच्छी होती है। जो भूमि देशी कपास के योग्य होती है वही इसके लिए भी योग्य हो सकती है। ढालू स्थान पर इसे कभी न बोना चाहिए। इसके अतिरिक्त चिकनोट भूमि, जिसमें पानी पड़ने व सिंचाई करने के पीछे दरारें फट जाती हैं, इसकी खेती के लिये बिलकुल बेकाम हैं। वह भूमि भी, जो ऊसर भूमि के निकट हो इसके लिए काम की नहीं है। ऐसी भूमि जिसमें पानी शीघ्र सूख जाता हो और जिसमें जड़ें सुगमता से नीचे चली जावें, इसके लिए बहुत अच्छी होती है। ऐसी भूमि में इसकी बोंडी बहुत फूलती है और उपज बहुत अधिक और अच्छी होती है।

खेत की तैयारी

जिस तरह पीयत के देशी कपास के लिए खेत तैयार किये जाते हैं, उसी तरह अमेरिकन कपास के लिए भी करना चाहिये। सियालू की फसल कटने के बाद ही जितना जल्दी हो सके उतना ही जल्दी खेत को जोत डालना चाहिए। लोहे के हलों से इस

खेत की जुताई करना चाहिए। कानपुर के प्रयोग क्षेत्र के अनुभव से यह मालूम हुआ है कि इसको जुताई के लिए लोहे के हल बहुत अच्छे होते हैं। पहली जुताई के बाद खेत को समतल कर लेना चाहिये और देशी हल से जुताई करनी चाहिए, जिससे घास-पात खेत से निकल जाय। जिस खेत में काँस तथा अन्य भाँति के घास-पात होते हैं वहाँ इसको उपज में बड़ी हानि पहुँचती है।

बोनी

इस कपास को बोनी के दो तरीके हैं—एक छिटकवाँ, और दूसरा हल के पीछे कूण्ड में। देशी और विलायती दोनों कपासों को कूण्ड में बोना अच्छा होता है। जब हल के पीछे बोया जाय तो एक कतार से दूसरी क़तार का अन्तर २॥ फीट से ३ फीट तक होना चाहिये। अनुभवी कृषि विद्या-विशारदों का कथन है कि इस कपास की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए इसे देशी कपास की तरह वैशाख और जेठ के बीच में बोना चाहिए। यह समय पञ्जाब, संयुक्तप्रांत और मध्य प्रदेश के लिए तो बहुत ही अच्छा है। दूसरे प्रान्तों के लिए भूमि व आबहवा का ध्यान रखकर काम करना चाहिए।

इस कपास की बुआई सियालू की फसल काटने के बाद जितना जल्दी हो सके उतनी जल्दी करनी चाहिये, क्योंकि देर में बोने से इसकी उपज अच्छी नहीं होती। इसे सर्दी अधिक लगती है, और देर से बोई हुई फ़सल पौष, माघ तक खिलती रहती है।

उस समय सर्दी के कारण इसकी बोंडी बराबर नहीं खिल पाती। तिस पर भी अगर कहीं पाला पड़ गया तो सारी फ़सल का सर्वनाश हो जाता है। इसीलिए हमने पहले कहा कि जहाँ जेठ और वैशाख मे सिंचाई का प्रबन्ध न हो सके वहाँ इसका बोना ठीक नहीं। इतने पर भी यदि बोना पड़े तो वर्षा होते ही बोना चाहिए। बीजारोपण के पहले ज़मीन को योग्य तादाद में पानी देना चाहिए। जब भूमि में पानी सूख जाय और मिट्टी में आल या नमी बनी रहे तब इसका बीज बोना चाहिए। एक एकड़ मे ५ सेर या एक पक्के बीघे म ३ सेर बीज पड़ता है। जब इसका बीज हल के पीछे कूँड़ में बोया जाय तो एक कूड़ से दूसरे कूड़ का फासला क़रीब १॥ हाथ याने २॥ फीट का होना चाहिए। अच्छे कमाये हुए और ताक़तवाले खेत में कुदरती तौर से इसके पौधे बड़े होते हैं। इसलिए उनको ज्यादा जगह की ज़रूरत होती है। अमरिकन कपास का पौधा झाड़दार होता है। वह देशी कपास की तरह लम्बा और सीधा नहीं होता। इसलिए देशी कपास के बनिस्बत विलायती कपास के पौधे के लिए ज्यादा जगह की ज़रूरत होती है। अच्छे विलायती कपास एक पौधे पर ४०० से लेकर ५८० तक ढोंडियाँ (भिटना) लगती हैं। ऐसी स्थिति में अमेरिकन कपास के पौधों को फलने-फूलने के लिए काफी जगह न मिला तो उसे साफ़ रोशनी न मिल सकेगी और इससे उसकी शाखाएँ छोटी रह जायँगी, फूल थोड़े आयेंगे और ढोंड़ियाँ (भिटने) छोटी और कम लगेंगी।

वैसे तो सब तरह के कपास के लिए छाया का होना हानि कारक है पर अमेरिकन कपास के लिये तो उसका होना बहुत ही बुरा है। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अमेरिकन कपास के साथ साथ अरहर (तुअर) न बोना चाहिए। अगर इसके बोने की जरूरत हो तो १० कूड कपास के बाद १ कूड जल्द होने वाली अरहर का बो देना चाहिए। अरहर के कूड पूर्व पश्चिम में होने चाहिये। अरहर का कूड में बोना चाहिए। इस कपास के बीज में मिलाकर बोने की आवश्यकता नहीं।

निराई और गुड़ाई

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अमेरिकन कपास का पेड देशी कपास के पेड से ज्यादा फैलाव का होता है। देशी कपास के पेड की तरह वह लम्बा नहीं होता। इसकी बहुत सी शाखायें इधर उधर निकली हुई रहती हैं। जब पहली निराई या गुड़ाई हो जाय तो कमजोर पेडों को उखाड कर फेंक देना चाहिए ताकि एक एक उम्दा पेड २ से २॥ फुट के फासले पर रह जाय। अगर अमेरिकन कपास के पौधों को पास पास रहने दिया तो रूई की पैदावार कम हो जायगी। इस कपास के बोने की ठीक ठीक दूरी जो कानपुर फार्म के तजुर्बे से लाभकारक मालूम हुई है वह पेड से पेड तक २ फीट और कूड से कूड तक २॥ है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान में रखना चाहिये कि अमेरिकन कपास की उत्तम से उत्तम उपज प्राप्त करने के लिए

खेत में रहे हुए घास पात को बिल्कुल साफ कर देना चाहिए। काँस, जंगली मोथा आदि उपज का बरबाद करने वाली कोई भी चीज खेत में न रहने देना चाहिए। जब कपास कतारों में बोया जाता है तो उसकी गुड़ाई निराई देशी हल से आसानी से हो सकती है। इससे वक्त, मेहनत और खर्चा सब में किफायत होती है।

खेत में अन्य प्रकार के पौधे

अकसर यह देखा जाता है कि अमेरिकन कपास के खेत में देशी कपास के कुछ पौधे भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए देशी कपास के पौधे ज्यों ही दिखाई दें, त्यों ही उन्हें उखाड़ कर फेंक देना चाहिए। नहीं तो उनसे अमेरिकन कपास के पौधों को नुकसान पहुँचने का डर रहेगा। यहाँ यह सवाल उठता है कि अमेरिकन कपास के पौधों और देशी कपास के पौधों की पहचान किस प्रकार की जावे। हम इस पर नीचे थोड़ा सा प्रकाश डालते हैं—

जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है, अमेरिकन कपास का पौधा, जब पूरा बढ़ जाता है तब वह देशी कपास से छोटा, झाड़दार और अधिक फैला हुआ होता है। उसके पत्ते चिकने और अधिक चौड़े होते हैं। देशी कपास की अपेक्षा अमेरिकन कपास के फूल बड़े होते हैं। देशी कपास का फूल या तो सफेद या गहरा पीला होता है और उसके बीच में लाल धब्बे

होते हैं। अमेरिकन कपास के फूल हल्के पीले रंग के और चौड़े होते हैं। उन पर लाल धब्बे नहीं होते। अमेरिकन कपास की बोंडी गोल चिकनी और बड़ी होती है, पर देशी कपास की बोंडी नुकीली, करकरी और छोटी होती है। देशी कपास की बोंडी के केवल ३ फाँकें होती हैं। इसके विपरीत अमेरिकन कपास की बोंडी में ४, ५ फाँकें होती हैं।

सिंचाई

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अमेरिकन कपास बारिश होने से पहले ही सींचकर बोया जाता है। इसके बाद की सिंचाई वर्षा पर बहुत कुछ अवलम्बित है। यदि वर्षा समय पर होती रहे तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती। जब पौधे मुरझाये हुए दिखाई दें उस समय सिंचाई करनी चाहिए।

खाद

अमेरिकन कपास को खाद की उतनी ही जरूरत है, जितनी कि देशी कपास को होती है। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि इस कपास की अच्छी पैदावार उसी हालत में हो सकती है जबकि खेत में भलीभाँति खाद दिया गया हो और जुताई, गुड़ाई, निराई ठीक-ठीक हुई हो। यह बात साबित हो चुकी है कि अच्छे मौके की जुताई खाद से ज्यादा काम देता है। अमेरिकन कपास की पैदावार उस खेत में अच्छी होती है, जिसको पिछली फसल में अच्छी तरह खाद दिया गया हो। वाकी अमे-

रिकन कपास में ने ही खाद दिये जाने चाहिएँ जो देशी कपास में अक्सर दिये जाते हैं।

कपास की बीमारियाँ

अन्य फसलों की तरह रुई के पौधों पर भी कई तरह की बीमारियाँ हमला करती हैं। इनसे करोड़ों रुपयों का नुकसान हो जाता है। पाठक जानते हैं कि संसार भर में सबसे अधिक कपास पैदा करनेवाला देश अमेरिका का संयुक्त प्रदेश है। अमेरिकी के विश्वकोष से मालूम होता है कि वहाँ इन रोगों के कारण प्रतिसाल कोई १८०००००० रुपयों का नुकसान होता है। हिन्दुस्थान और मिश्र आदि देशों में भी इनसे करोड़ों रुपयों का नुकसान होता है। कभी कभी सारी की सारी फसल चौपट हो जाती है। ईसवी सन १९११ में सिर्फ पंजाब में कोई तीन करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ।

जैसा कि हम पहले कहचुके हैं कि इन रोगों के निवारण का सबसे अच्छा उपाय कृषि की पद्धतियों में उन्नति करना है। इस से उनमें अधिक जीवन शक्ति का सञ्चार होगा। इसके अतिरिक्त कपास की ऐसी जाति पैदा करना जिसमें अन्य सब गुणों के साथ साथ रोगों का मुकाबला करने की अच्छी ताकत हो। हेरफेर कर फसल बोना, गहरी जुताई करना आदि बातें भी कपास के रोगों के निवारण में अच्छी सहायक होती हैं। इनसे उतरता हुआ उपाय यह है कि रोग लगे हुए पौधों को उखाड़कर जला दिये जावें।

यह उपाय रोग लगने के आरम्भ में करना चाहिये, जिससे यह अधिक न फैल सके।

जो कीडे देशी कपास को नुकसान पहुँचाते हैं, वही अमेरिकन कपास को भी नुकसान पहुँचाते हैं। इनमें सूँडी नामक इल्ली सबसे अधिक नुकसान पहुँचाती है। नीचे लिखी कार्रवाई करने से पौधे को इसके नुक़सान से बहुत कुछ बचा सकते हैं।

(१) शुरू में जैसे ही यह मालूम पडे कि किसी बोंडी में सूँडी लगी है वो होशियारी से उन सब बोंडियों को, जिनमें सूँडी लगी हो, पौधों पर से तोड लो और फिर सब को इकट्ठा करके दूर फेंक दो, ताकि सूँडी ज्यादा न बढने पावे।

(२) कपास के खेत के आस पास भिंडी न बोओ, क्यों कि यह इल्ली भिंडी को बहुत चाहती है। अतएव ज्यों ही कपास के गूलर तैयार होने लगते हैं, त्यों ही भिंडी को छोडकर यह कपास पर हमला कर देती है। अगर कपास के आस पास भिंडी के पौधे हों तो उन्हें कपास में फूल आने के पहले ही उखाड कर फेंक दो।

(३) पौधों के घने होने के कारण और अच्छी तरह से निराई न होने के कारण भी कीडे लग जाते हैं।

अमेरिकन कपास के पौधों के पत्तों में एक कीडा लगता है जिसे 'पत्ती लिपटौआ' कहते हैं। यह कीडा पत्तियों को अपने ऊपर लपेट लेता है और खाजाता है। यह कीडा अक्सर देशी

कपास के पौधों की पत्तियों पर भी पाया जाता है। इसे भोंभा भी कहते हैं। जब पत्तियाँ लिपटी हुई दिखाई दे तो फौरन उन सबको तोड़ कर एक टीन के कनस्टर में—जिसमें कि एक हिस्सा मिट्टी का तेल और तीन हिस्सा पानी हो—डालते जाओ और जब सब कीड़े वाली पत्तियाँ इकट्ठी होजायँ तो दूर लेजाकर फेंक दो।

आलू की खेती

आजकल हिन्दुस्थान में आलू का प्रचार बहुत बढ़ रहा है। लोग इस की साग का बड़ा चाह से खाते हैं। कुछ शताब्दियों पहले लोग इसे जानते भी नहीं थे। इसका मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। स्पेन देश के लोगों ने पहले युरोप में इसका प्रचार किया। इसके बाद यह जर्मनी और आस्ट्रेलिया में पहुँचा। भारतवर्ष में सब से पहले इसकी खेती सूरत नगर में की गई और धीरे धीरे यह अन्य प्रान्तों में भी बोया जाने लगा।

आलू की खेती के लिये उपयुक्त जमीन

यों तो हर एक जाति की जमीन में आलू पैदा हो सकता है, लेकिन इसके लिये वह जमीन उत्तम है जिस में पानी का निकास अच्छा होता हो जिस में आलू के लिये अधिक पोषक पदार्थ हों तथा जिस में चूने की कंकरी का भी कुछ भाग हो। लाल मिट्टी वाली भूमि भी आलू के लिये अच्छी समझी जाती है। इससे बढ़ कर भूरी और पीली मिट्टी वाली भूमि मुफीद मानी गई है। आलू की खेती के लिये नरम जमीन का होना बहुत जरूरी है। जिस खेत की मिट्टी के ढेले हाथ से दबाने पर बिखर जावें वह आलू की खेती के लिये योग्य होता है, बशर्ते की उसकी जमीन की गहराई काफी हो। जिस जमीन में पानी भरा रहता है, वह आलू के पौधे के लिये अच्छी नहीं समझी जाती। काली मिट्टी वाली जमीन भी आलू की खेती के लिये ठीक नहीं मानी जाती, पर वह मल तथा गोबर के खाद के द्वारा आलू की काश्त के योग्य बनाई जा सकती है। इसी हिकमत से हलकी जमीन भी आलू की खेती के लायक हो सकती है।

आलू के लिये मातब्बर जमीन होनी चाहिये। साथ ही में वह ६, ७ इञ्च तक खुली होनी चाहिये। खुली से हमारा मतलब जमीन की ऐसी मिट्टी से है जो हाथ में लेते ही बिखरने लगे। इस जमीन के पास अगर पानी का संचय हो तो और भी अच्छा।

फसल का बदलना

आलू के पहले खेत में जो फ़सल बोई जाती है, उसका आलू का फ़सल पर बहुत असर गिरता है। इसके पहले अगर फलो की जाति की कोई फसल बोई जाने तो आलू को खेती पर उसका खाद सरीखा असर होगा। पर आलू के पहले अक्सर मका बोई जाती है। लगे हाथ एक ही खेत में आलू को फसल दो साल के ऊपर तक बोते जाना ठीक नहीं। ऐसा करने से जमीन में रोग की जड़ बैठ जाने का धोका रहता है। अगर जमीन में आलू के रोग का जड़ जम गई तो उसके निवारण के लिये उस खेत में गेहूँ या मूंगफली की फसल बोना लाभदायक है।

खेत की तैयारी

आलू की खेती के लिये गहरी जुताई की बड़ी आवश्यकता है। इससे आलू की खेती पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। गत २५ वर्षों में जमनी ने आलू की खेती में ८० फी सदी और अमेरिका के संयुक्त देश ने ४० फी सदी उपज बढ़ा ली है। युरोप में जर्मनी का आलू सब से बढ़िया माना जाता है। इसका कारण यह है कि यहां के किसान बड़ी मेहनत के साथ खेत की जुताई करते हैं। वे अपनी जमीन को नरम और पोली बना कर तथा उसमें उपयुक्त खाद देकर उसे उपजाऊ बनाते हैं, और फिर उसमें आलू की फसल बोते हैं। खेती विद्या से जानकारी रखने वाले हमारे पाठक जानते होंगे को आलू के पौधे का जड़ बहुत

गहरी जाती है। देखा गया कि एक खेत में यह जड़ १२ इञ्च तक नीचे गई। दूसरी जगह २४ इञ्च तक गहरी गई। प्रारम्भ में गहरी जुताई किये गये एक खेत में यह ७२ इञ्च तक नीचे पहुँच गई। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि आलू के लिये गहरी और अच्छी जुताई करना बहुत फायदेमन्द है। कम से कम ७ से ८ इञ्च तक गहरी जुताई करना चाहिये। जुताई के समय जो बड़े बड़े मिट्टी के ढेले जमीन के ऊपर आजावें उन्हें फुड़वा देना चाहिये। जुताई के समय इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि किसी प्रकार का घास-पात, कास व खर पत वार खेत में न रहने पावे।

बीज।

कहने की आवश्यकता नहीं कि "जैसा बीज वैसा फल" की कहावत जिस प्रकार दूसरी फसलों के लिये लागू है ठीक वैसे ही यह आलूकी फसल के लिये भी लागू है। इसके लिये भी हृष्ट पुष्ट और निरोग बीजों के चुनने की ओर ध्यान देने की बड़ी जरूरत है। हम समझते हैं कि आलू के बीज में नीचे लिखे हुए गुणों का होना आवश्यक है।

(१) बीज में बीमारियों का मुकाबला करने की ताकत हो अर्थात् ऐसी निरोगी जाति का बीज चुना जावे कि जिस पर या तो बीमारी का असर ही न हो और अगर हो भी तो बहुत कम।

(२) बीज में अधिक से अधिक फसल पैदा करनेकी ताक़त हो।

(३) ऐसे बीज बोने चाहिये जिनके पौधों में बड़े बड़े और हृष्ट पुष्ट आलू लगें।

(४) जल्दी पकने वाला बीज हो।

बम्बई कृषि विभाग के भूत पूर्व डायरेक्टर डॉक्टर मेन महाशय इटली के आलू के बीजों को बोने के लिये जोर से सिफारिश करते हैं। आपका कथन है कि इटली के बीजों में रोग लगने की सम्भावना नहीं रहती। गुण में भी यह अपनी सानी नहीं रखता। यूरोप के तमाम देशों के आलू से वह श्रेष्ठतर होता है। उसकी अङ्कुरण शक्ति अच्छी होती है। देशी बीजों में भारत की गरम आब हवा के कारण अङ्कुरण शक्ति ठीक नहीं होती। अतएव बीज के लिये इटली के आलुओं को चुनना ही लाभकारक है।

ईसवी सन् १९२२ में बम्बई प्रान्त के कृषि विद्या विशारद मि० जी० एस० कुलकर्णी लंदन से भारत को लौटते समय इटली के आलुओं की जांच करने के लिये वहाँ की राजधानी रोम नगर गये। आपने जांच पड़ताल करने के बाद जो रिपोर्ट लिखी है, वह मनोरंजक है और उसका संक्षिप्त आशय हम नीचे देते हैं—

'ईसवी सन् १९२२ में मैं रोम पहुँचा और वहाँ के ब्रटिश राजदूत को अपने आने के उद्देश्य की सूचना दी। उन्होंने मुझे "अन्तर्राष्ट्रीय कृषि-संस्था' (International Institute of Agri-Culture) में भेजा। यहाँ फसलों के रोगों के लिये एक जुदा विभाग है। मैं उस विभाग के अध्यक्ष प्रो० ट्रिचायरो से मिला। व कृपा कर मुझे उस संस्था की विशाल प्रयोगशाला (Labora-

tory) में लेगये। मैं यह देख कर आश्चर्य चकित होगया कि इटली में होनेवाली आलू की फसल फंगस तथा कीटाणुजनित रोगों से मुक्त है। हाँ, इसे कभी कभी ब्लाइट नामक बीमारी होती है जो दवा के छिड़काव से आराम करदी जाती है। यूरोप के अन्य देशों में आलू की फसल को जो अनेक तरह के रोग लगते हैं उनका इटली में नामों निशान भी नहीं है"

"रोम से मैं इटली के नपल्स नगर गया। यह आलू की फसल का केन्द्रस्थल है। यहाँ मैं मि० लिटल नामक एक अंग्रेज सज्जन से मिला। ये विशाल पाये पर आलू की खेती करते हैं। इनकी कृपा से मुझे आलू के बहुत से खेत देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इस सम्बन्ध की बहुतसी जानकारी भी प्राप्त की।"

"नेपल्स से मैं पोर्टसी नामक एक उपनगर में गया। यहाँ एक कृषि कॉलेज है। इसके डायरेक्टर प्रो० सायल बस्त्री से मिला। उनसे भी मुझे यही मालूम हुआ कि इटली के आलू बहुत सी बीमारियों से मुक्त हैं। हाँ, कोई १२ वर्ष के पहले मिश्र के टमाटो सब्जी के साथ पुनगा (Moth) नामक जीवाणु ने यहाँ प्रवेश पालिया था पर वह तुरन्त नष्ट कर दिया गया"।

श्रीयुत कुनकर्णी महाशय की रिपोर्ट से हमने उपरोक्त उद्धरण इस लिये दिया कि हमारे विद्यार्थियों तथा किसानों का दृष्टिकोण विस्तृत हो। उन्हें देश देशान्तरों की खेती और फसल के हाल मालूम हों। वे अपने देश की फसल के सुधार के लिये अन्य देशों की ऊँची जाति के अनाजों का अपनी खेती में प्रयोग करें

और अगर वे लाभ कारक जँचे तो उनका प्रचार करें। अब वह समय आगया है कि 'कुएँ के मेंडक' बनने से काम नहीं चल-सकता। अन्य राष्ट्रों के साथ हमें उन्नति की घुडदौड में दौड़ना है। आगे निकलने में जीवन है और पीछे रहने मे मृत्यु है, यह बात हम स्वप्न मे भी नही भूलना चाहिये।"

कहने का अर्थ यह है कि डॉक्टर मेन महाशय ने थानी के लिये इटली के बीज को काम में लाने का सलाह दी और मि० कुलकर्णी के प्रत्यक्ष अनुभव भी उनका समर्थन करता है।

इसके अतिरिक्त अनुभव से यह भी पाया गया है कि खेत से ताजा निकाले हुए आलू की गाठों (Tubers) को बोने के काम में लेने से उनके गल जाने या सड़ जाने का भय रहता है। इन्हे कुछ मास तक धरती पर छाया में फैला कर रखना चाहिये। बोरों में भरने तथा ढेर लगाकर रखने से उनके बिगड जाने का भय रहता है। सुप्रसिद्ध कृषि विद्या विशारद डॉक्टर मेन महोदय उक्त बात का समर्थन करते हुए लिखते हैं—

"इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि बीज के लिये चुने गये आलुओं को कुछ मास तक पड़े रखना चाहिये। ऐसा करने से उनकी अङ्कुरण शक्ति बढेगी और वे बीज की दृष्टि से अधिक उपयोगी होजावेंगे। ताजे आलू चाहे कितनी ही सावधानी ■ क्यों न चुने गये हों उनकी अंकुरण शक्ति उन आलुओं के मुकाबले में कम होगी जो कुछ मास से जमा कर रखे गये हैं। आलू का बीज कम से कम दो मास तक

तो रक्खा रहना ही चाहिये। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि खेत से निकालने के बाद सात मास तक तो आलू की अंकुरण शक्ति बढ़ती रहती है। इसके बाद फिर वह कम पड़ने लगती है।" डॉक्टर महोदय ने इस सम्बन्ध में जो प्रयोग किया था, उसकी तालिका नीचे दी जाती है।

बीजों के संचय कर रखने की अवधि		दो सप्ताह में प्रतिशत कितने पौधे अंकुरित हुए उनकी संख्या		तीन सप्ताह में प्रतिशत कितने पौधे अंकुरित हुए उनकी संख्या	
२	मास	×		×	
२॥	,,	×		२०	प्रतिशत
३	,,	२५	प्रतिशत	४०	,,
३॥	,,	४०	,,	७०	,,
४	,,	५०	,,	८०	,,
४॥	,,	६०	,,	८५	,,
५	,,	७०	,,	९०	,,
६	,,	८०	,,	९५	,,
७	,,	१००	,,	१००	,,
८	,,	८०	,,	८५	,,
९	,,	६०	,,	७०	,,
१२	,,	४०	,,	६०	,,

जैसा कि ऊपर कहा गया है आलू की फसल की असफलता का एक कारण यह है कि बीजों की उत्पादन शक्ति व ठीक हुए बिना ही व खेतों में बो दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कारण हैं जिन्हें भुलाने से काम नहीं चल सकता। कृषि विद्या के जानकार जानते हैं कि घुनगा (Moth) और बँगडी नामक दो बीमारियाँ ऐसी हैं जो बहुधा सञ्चय गृह में रक्खे हुए बीजों को लग जाया करती हैं। आलू बोनेवाले किसान इन दो भयङ्कर कीड़ों को आलू के बीज तथा फसल के लिए जानी दुश्मन समझते हैं।

समझदार किसानों को चाहिए कि वे खेत में बीज बोने के पहले उसकी भलीभाँति जाँच करा लें और जिन बीजों में उपरोक्त रोगों के लक्षण दिखाई दे उन्हें कदापि न बोवें। क्योंकि आलू का वह बीज जिसे घुनगा (Potato moth) लगा है कदापि अङ्कुरित नहीं हो सकता। बँगडी (Ring disease) नामक रोग से सताया हुआ बीज अङ्कुरित भले ही हो जाय, परन्तु उससे उत्पन्न हुआ पौधा अवश्य मर जायगा। साथ ही वह पासवाले अन्य पौधों का भी नुक्सान पहुँचायगा। हमने कई बार बोने के लिये तैयार रक्खे हुए बीजों की परीक्षा की गई है और उनमें से अधिकांश बीजों को रोगग्रस्त पाया है।

नीचे हम खेड ताल्लुके में की गई इसी प्रकार की एक परीक्षा का उदाहरण देते हैं। ३८५६ बोये जानेवाले बीजों की जाँच करने पर जो फल निकला वह इस प्रकार है —

(१) २६६९ अर्थात् ६९.२ प्रतिशत बीज अच्छे और बोने योग्य दशा में पाये गये।

(२) २०३ अर्थात् ६६ प्रतिशत बीज बँगडी (Ring disease) रोग में ग्रस्त पाये गये।

(३) २६९ अर्थात् ७.७ प्रतिशत बीज फुलगा (Potato moth) से इस प्रकार ग्रस्त पाये गये कि वे अधिक उपयोगी नहीं कहे जा सकते।

(४) १३५ अर्थात् ३५ प्रतिशत बीज फुलगा (Potato moth) से इतने ग्रस्त थे कि वे किसी काम के नहीं रहे।

(५) ३६७ अर्थात् ९५ प्रतिशत बीज खोखे की बीमारी (Dry rot) में ग्रस्त पाये गये।

(६) १२६ अर्थात् ३२ प्रतिशत बीज अँखुओं (Eye-buds) से रहित होने के कारण अँकुरित होने योग्य न थे।

उपरोक्त उदाहरणों से पता चलता है कि ७ प्रतिशत बीज उगाये जाने के कदापि योग्य न थे। ६.८ बँगडी (Ring disease) रोग से ग्रस्त थे। इसी भाँति १७ प्रतिशत दूसरे बीज भी रोग अथवा अन्य किसी न किसी कारण से अयोग्य थे। कहने का साराश यह है कि भारतवर्ष के प्राय सभी स्थानों में आलू के लिये काम में लाये जानेवाले बीजों का एक तिहाई भाग किसी न किसी कारण से बोने योग्य नहीं रहता और यही कारण है कि उनकी उपज में भी कमी होती है। यह भी देखा गया है कि प्राय ६१ प्रतिशत किसान ऐसे बीजों को काम में लाते हैं, जिनमें

८० फ़ीसदी से भी कम बीज निरोगी और अंकुरित होने के योग्य होते हैं।

खोरा (Dry rot) नामक रोग के अतिरिक्त आलू को नुक्सान पहुँचानेवाली दूसरी बीमारियाँ, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, फुलगा और घेंगडी हैं।

फुलगा नामक रोग आलुओं को खेत और गोदाम दोनों स्थानों पर हानि पहुँचाता रहता है। इससे बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। इस दुष्ट रोग के प्रभाव से पौधे की अंकुरण शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है। कृषि विभाग बम्बई का अनुभव है कि यदि आलू के बीजों की अँखुए (Eye buds) निकलने के बाद मिट्टी चढादी जावे तो उपरोक्त रोग पौधों को बहुत कम हानि पहुँचा सकेगा। ऐसा करने से आलू के पौधों की जड दृढ़ होती हैं तथा उन्हें मिट्टी से आहार भी अधिक प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसानों को आलू को लगने वाले इस रोग से बहुत सावधान रहना चाहिये। खेड तालुके के किसानों का तो यहाँ तक कहना है कि आलू की फसल का १० से १५ प्रतिशत हिस्सा केवल इसी एक रोग के कारण नष्ट हो जाता है।"

घेंगडी (Ring disease) का रोग यद्यपि साधारणतया उतना हानिकारक नहीं है जितना कि फुलगा, परन्तु यदि समय पर इस रोग से पौधों को बचाने का उपाय न किया गया तो यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि पौधों की अंकुरण शक्ति को